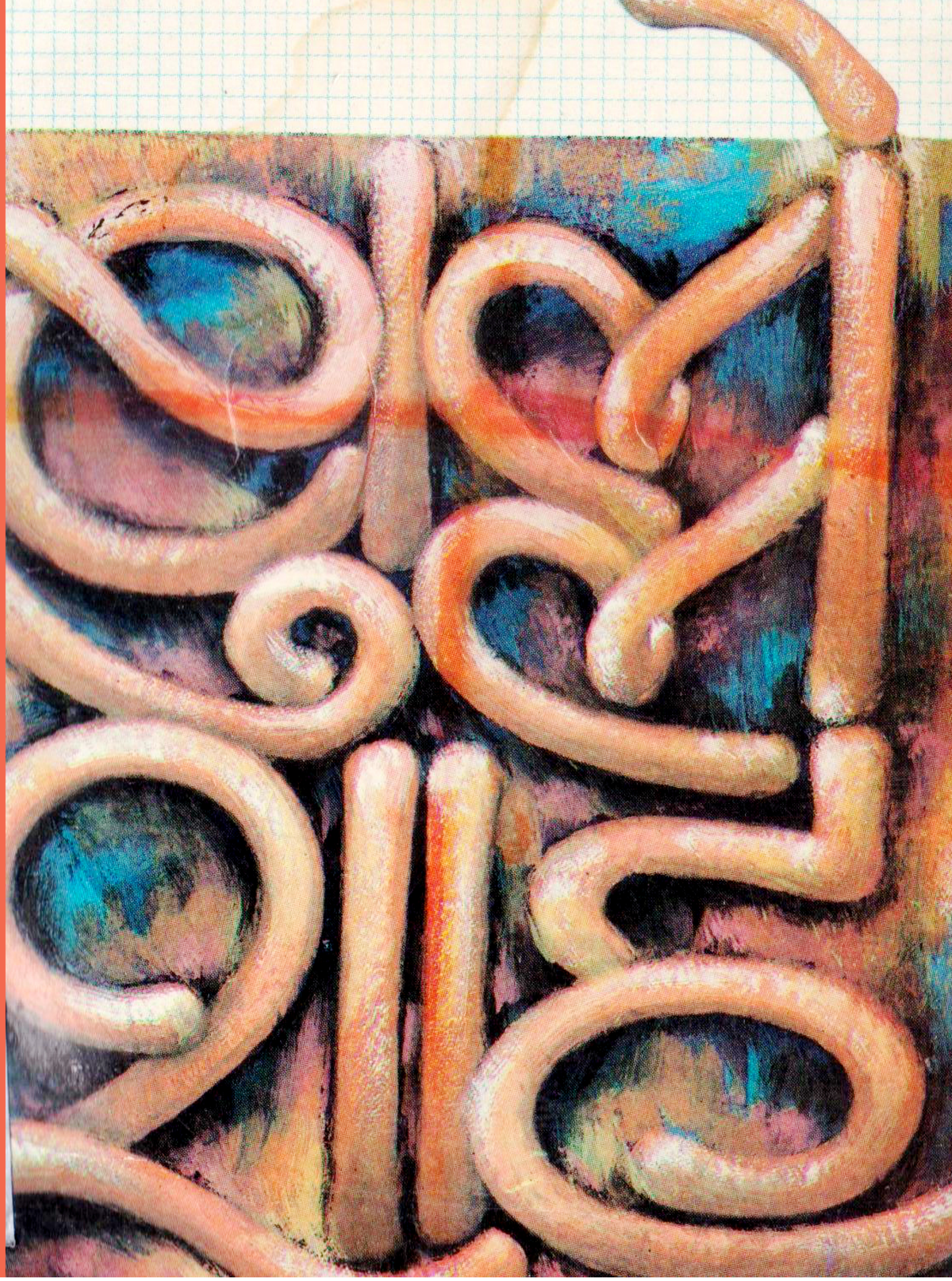
लोकप्रिय संत-भक्त-कवि

बुल्लेशाह

परिचय तथा कविताएं





लोकप्रिय सूफी संत

बुल्लेशाह

● भारतीय संत परम्परा के महान् कवि थे बुल्लेशाह। पंजाब की माटी में जन्मे, पर जिनकी ख्याति पूरे देश में फैली। उनके गीत करोड़ों ज़बानों से गुनगुनाए जाने लगे।

● वह ईश्वरीय प्रेम के पक्षधर थे। ऐसा प्रेम जिसमें डूबकर मनुष्य-मात्र की जीवन नैया पार लगती है और वह समाज में श्रेष्ठ पुरुष के रूप में जाना जाता है।

● वह ऊंची जाति के मुस्लिम यानी सैयद थे; पर उनके वचनों, वाणी और काव्य को अपनाया हिन्दू और सिखों ने भी। वह रब के सच्चे बन्दे थे और मानव मात्र को सत्य, प्रेम, शुद्ध मन, श्रेष्ठ आचरण तथा मर्यादा की प्रेरणा देते थे।

● सन् १६८० में अवतरित होने वाले समय-पुरुष की जीवन कथा और उनके काव्य को प्रस्तुत किया है पंजाबी के विद्वान् डा० हरभजन सिंह ने।

लोकप्रिय संत-भक्त कवि-माला

तुलसीदास	सुदर्शन चोपड़ा	१४/-
कबीर	सुदर्शन चोपड़ा	१४/-
अमीर खुसरो	सुदर्शन चोपड़ा	१४/-
सूरदास	सुदर्शन चोपड़ा	१४/-
मीरा	सुदर्शन चोपड़ा	१४/-
गुरु नानक	डॉ० महीप सिंह	१४/-
संत रैदास	योगेश गुप्त	१४/-
चैतन्य महाप्रभु	डॉ० शांतिस्वरूप त्रिपाठी	१४/-
संत ज्ञानेश्वर	डॉ० प्रभाकर माचवे	१४/-



प्रस्तुति/डॉ0 हरभजन सिंह

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

बुल्लेशाह
(जीवनी तथा कविताएं)

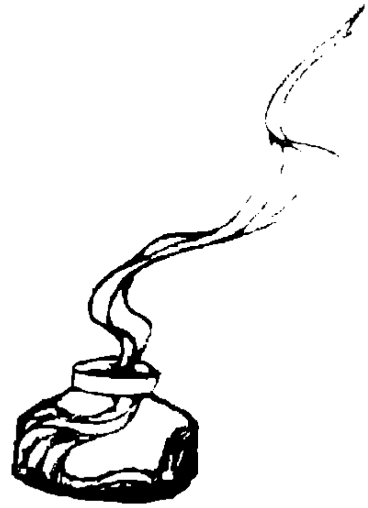
प्रथम संस्करण : १९९०

प्रकाशक :
हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
पोस्ट बॉक्स ६०२०
जी० टी० रोड,
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

मुद्रक :
जैन कम्पोजिंग एजेन्सी
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

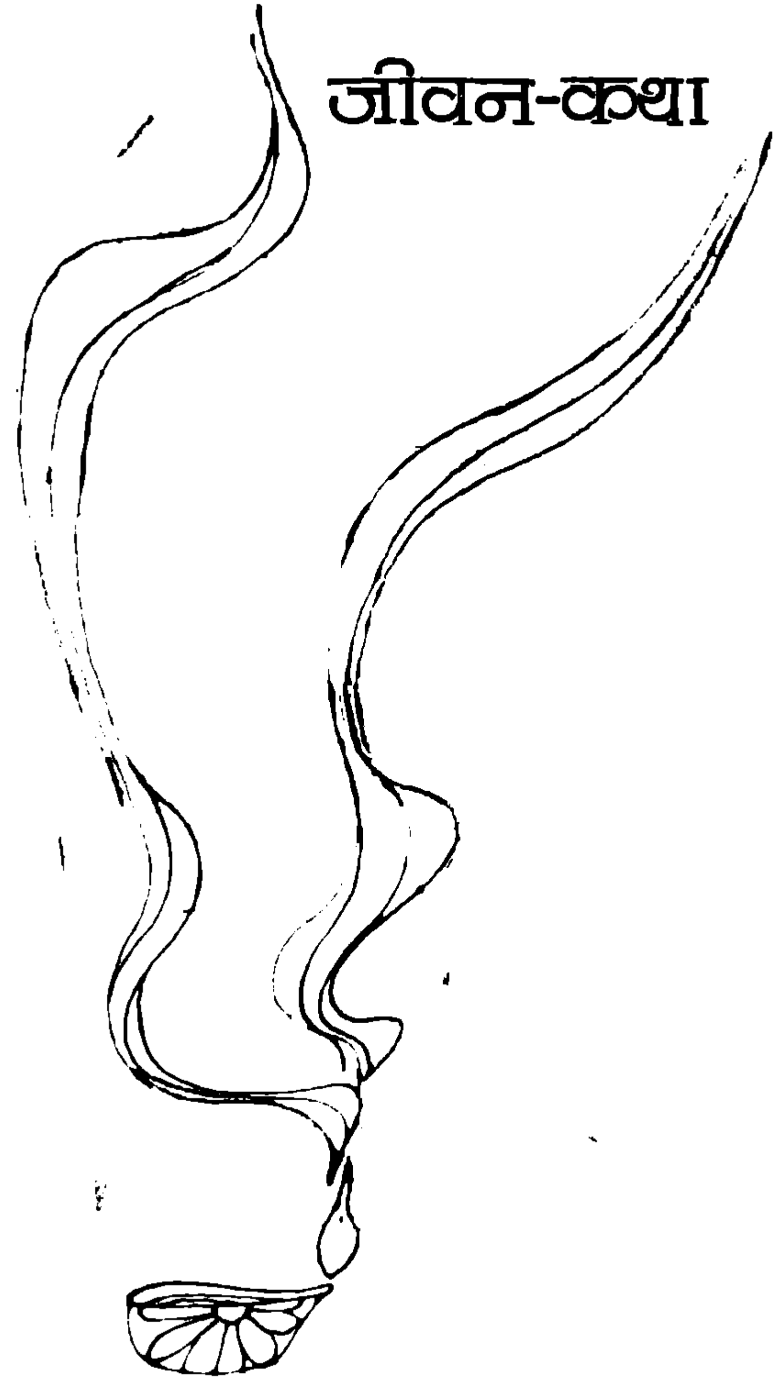
BULLESHAH
(Life & Poetry)
Dr. HARBHAJAN SINGH

ISBN—81-216-0152-5



क्रम

जीवन-कथा



एक संत की जीवनी

उत्तर भारत खासकर पंजाब के सबसे बड़े सूफ़ी कवि माने जाने वाले साईं बुल्लेशाह का मूल नाम अब्दुल्लाशाह था जो आगे चलकर बुल्लाशाह या बुल्लेशाह हो गया। प्यार से कोई इन्हें बाबा बुल्लेशाह कहता तो कोई साईं बुल्लेशाह और कुछ केवल बुल्ला। 'चालीसवीं गंठ' के अन्त में आये इस पद से उनके मूल नाम का संकेतमिलता है :

हुन इक अल्लाह आख के तुम करो दुआईं।
पिया ही सम हो गया अबदुला नाहीं।

इनके जीवन से सम्बंधित विस्तृत और विश्वसनीय जानकारी प्राप्त नहीं है। इनके विषय में विद्वानों में अलग-अलग मान्यताएं हैं किन्तु जिन तथ्यों के विषय में विद्वानों में आम सहमति है, उनके अनुसार आपका जन्म सन् १६८० में पैतृक गांव उच गीलानियां में हुआ था। इनके पिता शाहमुहम्मद दरवेश को अरबी, फ़ारसी और क़ुरान शरीफ़ का अच्छा ज्ञान था। वे आजीविका की खोज में सपरिवार उच गीलानियां छोड़कर सपरिवार कसूर (पाकिस्तान) के दक्षिणपूर्व में १४ मील दूर 'पांडो के भट्टियां' नामक गांव में बस गये थे। उस समय बालक बुल्लेशाह की उम्र लगभग ६ वर्ष की रही होगी। बुल्लेशाह जीवन-भर कसूर में ही रहे। इसी नगर में इनका देहान्त १७५७ ई० में हुआ।

इनके पिता शाह मुहम्मद दरवेश पांडो के भट्टियां की मस्जिद के मौलवी थे और इस गांव के बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा देने का कार्य भी इन्हीं के सुपुर्द था। बुल्लेशाह सैयद जाति के थे और इनके वंश का सम्बन्ध सैयद होने के कारण एक ओर हज़रत मुहम्मद से जुड़ा हुआ था तो दूसरी ओर सूफ़ी विचारधारा और परम्परा से उस वंश का सदियों पुराना सम्बन्ध था।

बुल्लेशाह के पिता के नेक जीवन के कारण उनको दरवेश कहकर आदर दिया जाता था। आज भी बुल्लेशाह के पिता का मजार पांडो के भट्टियां में है जहां हर साल उर्स लगता है और बुल्लेशाह की काफ़ियां गाई जाती हैं।

बुल्लेशाह का बचपन अपने पिता की देखरेख में ही बीता और आरम्भिक शिक्षा एवं संस्कार अपने पिता से ही प्राप्त हुए। इनकी उच्च शिक्षा कसूर में हुई जो उन दिनों इस्लामी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। बुल्लेशाह ने कसूर में हज़रत ग़ुलाम मुर्तज़ा सरीखे ख्यातनामा उस्ताद से शिक्षा पाई। अपनी बौद्धिक और चारित्रिक विशेषताओं के कारण बुल्लेशाह ने योग्य अध्यापकों से बहुत कुछ सीखा।

अरबी, फ़ारसी के उच्च विद्वान् होने के साथ-साथ बुल्लेशाह ने इस्लामी और सूफ़ी धर्मग्रन्थों का भी गहन अध्ययन किया था। जब इनकी अल्लाह से लिव लग गई तो इस ज्ञान की एक नयी ही चमक सामने आई। धर्मग्रंथों के अध्ययन से उनके अंतर में जो चिंगारी उदित हुई तो परमात्मा के दर्शन की तड़प और उसे पूरा करने का मार्ग बताने वाले की खोज ही उन्हें क़ादिरी सूफ़ी फ़कीर हज़रत शाह क़ादिरी के द्वार तक खींच ले गई।

हज़रत इनायतशाह का डेरा लाहौर में था। वह जाति के अराईं थे। अराईं लोग खेती-वाडी, बागबानी और साग-सब्जो की खेती करते थे। वह कुछ दिनों कसूर में भी रहे लेकिन वहां के शासक के विरोध के कारण लाहौर चले गये थे और जीवन के अन्तिम दिनों तक लाहौर में रहे। वहीं उनका मकबरा भी है।

बुल्लेशाह के परिवार जनों को इस बात का दुःख था कि जिस सैयद

कुल के पुरखों ने समस्त मानव जाति को नये मार्ग का दरस दिया, उसी के एक सदस्य ने निम्न जाति अराईं के हज़रत इनायतशाह को अपना मुर्शिद अथवा गुरु बनाया। बुल्लेशाह की बहनें और भावजें उन्हें इस मार्ग पर चलने से रोकती रहीं किन्तु बुल्लेशाह तो शाह इनायत को पूर्ण गुरु मानते थे, अतः अपने निर्णय से टस से मस न हुए।

इस विषय में अपने परिवार जनों के साथ हुई तकरार का ज़िक्र उन्होंने निम्न शब्दों में किया है :

बुल्हे नूं समझावण आइयां
भैणा ते भरजाइयां
"मन्न लै बुल्लिआ साडा कहणा
छड़ दे पल्ला, राइयां।
आल नबी औलाद अली नं
तूं क्यों लीकां लाइयां ?"

(बहिनें और भावजें बुल्लेशाह को समझाने आईं और कहने लगीं—बुल्लेशाह, हमारा कहना मान लो और अराईं का साथ छोड़ दो। तुम तो नबी के ख़ानदान से हो और अली के वंशज हो। फिर क्यों (इस अराईं की खातिर) उनकी लोकनिन्दा का कारण बनते हो ?)

किन्तु बुल्लेशाह के हृदय में तो अपने मुर्शिद के प्रति परम श्रद्धा का भाव था और वे जातीय भेद-भाव को सर्वथा त्याग चुके थे। इसलिए उन्होंने उत्तर में कहा :

जेहड़ा सानूं सैयद आखे
दोज़ख़ मिले सजाइयां
जो कोई सानूं, राईं आखे
भिश्ती पींगा पाइयां॥

(जो कोई हमें सैयद कहेगा, उसे दोज़ख़ की सजा मिलेगी और जो हमें अराईं कहेगा, वह बहिश्त में झूला झूलेगा।)

बुल्लेशाह और उनके मुर्शिद (गुरु) शाह इनायत के आपसी सम्बन्धों

को लेकर बहुत-सी जनश्रुतियां प्रचलित हैं। कहते हैं कि जब बुल्लेशाह जिज्ञासु भाव से शाह इनायत की बगीची के पास पहुंचे तो सड़क के किनारे के वृक्ष आमों से लदे थे और पास ही साईं जी प्याज की पनीरी लगाने में व्यस्त थे। उन्हें पता भी नहीं चला कि कोई उनसे मिलने आया है। बुल्लेशाह बिना बुलाये ही अपने आगमन की सूचना देना चाहते थे। इसलिए पहले से किये आध्यात्मिक अभ्यास की शक्ति से उन्होंने परमात्मा का नाम लेकर आमों की ओर जो देखा तो पेड़ों से आम धड़ाधड़ नीचे गिरने लगे। साईं जी ने मुड़कर देखा तो पाया कि एक नवयुवक खड़ा है और आम बिना कारण गिर रहे हैं। उन्होंने पूछा —"ऐ नौजवान, ये आम क्यों तोड़े हैं?" बुल्लेशाह ने पास जाकर कहा कि "साईं जी, न तो मैं पेड़ों पर चढ़ा और न कंकड़-पत्थर फेंके। भला मैं आम कैसे तोड़ सकता हूं!"

"अरे तो तू चोर भी है और चतुर भी।" साईं ने बुल्लेशाह को ऊपर से नीचे तक देखकर कहा। बुल्ला तुरन्त साईं के पैरों में पड़ गया। साईं ने उनका नाम पूछा और जानना चाहा कि आखिर क्या चाहता है? बुल्लेशाह ने अपना नाम बताकर कहा कि मैं रब को पाना चाहता हूं। साईं जी ने कहा, "अरे तू नीचे क्यों गिरता है? उठ और मेरी तरफ देख।" ज्योंही बुल्लेशाह ने सिर उठाकर इनायतशाह की ओर देखा तो सहजभाव से कहा, "बुल्लिहआ रब दा की पौणा। एधरों पुटणा ते ओधर लाउणा।" (ईश्वर का पाना तो बस ऐसे ही है जैसे एक पौधा इधर से उखाड़ना और दूसरी तरफ़ लगा देना।) इन चन्द सीधे-सादे शब्दों में मुर्शिद ने रूहानियत का सार समझा दिया था। मन को बाहर और संसार की तरफ़ से हटाकर परमात्मा की ओर मोड़ देने से रब मिल जाता है। साथ ही व्यावहारिक रूप से समझा भी दिया कि यह कार्य गुरु की कृपादृष्टि से सहज संभव है। मेधावी मुरीद (शिष्य) बुल्लेशाह ने अपने मुर्शिद की यह प्रथम दीक्षा गांठ बांध ली। उसके लिए इतना ही काफ़ी था। उसका काम हो गया था।

इस छोटी-सी सारगर्भित घटना ने सतगुरु की कृपादृष्टि की महानता की अमिट छाप बुल्लेशाह के मन पर डाल दी थी। सतगुरु के

दर्शन पाकर बुल्लेशाह बेखुद हो गया और मंसूर की भांति उस बेखुदी में बहने लगा। उसका समय अद्भुत मस्ती में डूबता गया। सतगुरु की संगति और उनके बताये मार्ग पर चलकर साधना करते हुए बुल्लेशाह अध्यात्म की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ प्रतिदिन आगे बढ़ने लगा।

बुल्लेशाह के मन पर अपने मुर्शिद का इतना गाढ़ा रंग चढ़ गया कि उसको गुरु के अलावा किसी की भी सुध-बुध नहीं रही। उनमें अनोखी विरक्ति ने जन्म ले लिया और उनके हर कार्य में रहस्यमय संकेत फूटने लगे। बुल्लेशाह साईं इनायत को रसूल अल्ला जैसा आदर-सम्मान देते थे। कहते हैं कि एक बार बुल्लेशाह की इच्छा हुई कि मदीना शरीफ़ की ज़ियारत को जाए। उन्होंने अपनी इस इच्छा का ज़िक्र अपने मुर्शिद से किया और मदीना जाने की आज्ञा मांगी। शाह इनायत ने पूछा कि तुम मदीना शरीफ़ की ज़ियारत क्यों करना चाहते हो। उत्तर में बुल्लेशाह ने कहा कि 'वहां हजरत मुहम्मद का रौज़ा शरीफ़ है और स्वयं रसूल अल्ला ने फ़रमाया है कि जिसने मेरी क़ब्र की जियारत की गोया उसने मुझे जीवित देख लिया।' यह सुनकर शाह इनायत चुप रहे। कुछ देर के बाद उन्होंने कहा कि इसका जवाब मैं तुझे तीन दिनों के बाद दूंगा।

बुल्लेशाह ने मदीना के लिए अपनी रवानगी स्थगित कर दी। तीसरे दिन बुल्लेशाह ने स्वप्न में हज़रत रसूल के दर्शन किये। रसूल अल्ला ने बुल्लेशाह से कहा, "बुल्लेशाह, तेरा मुर्शिद कहां है? उसे बुला लाओ।" बुल्ला अपने मुर्शिद को बुला लाया। रसूल ने इनायतशाह को अपनी दायीं ओर बिठा लिया। बुल्ला नज़रें झुकाये इन दोनों के सामने खड़ा रहा। जब नज़रें उठीं तो बुल्ले को लगा कि रसूल और मुर्शिद की सूरत बिल्कुल एक जैसी है। वह पहचान ही न पाया दोनों में से मुर्शिद कौन है और रसूल कौन। इस जनश्रुति की अनुगूंजें बुल्लेशाह के कलाम में भी मिलती हैं। वे कहते हैं :

हाजी लोक मक्के नूं जांदे
असां जाणा तख्त हज़ारे,
जित वल यार उसे वल काबा
भावें खोल किताबां चारे।

(हाजी लोग तो (हज के लिये) मक्के की ओर जाते हैं, मुझे तो तख़्त हज़ारे की ओर जाना है। जिस ओर मेरे यार का घर है, उसी तरफ़ मक्का और काबा हैं, बेशक चारों ही किताबें खोलकर देख लो।)

बुल्लेशाह अपने मुर्शिद को शौह (पति) मानते थे। इस सम्बन्ध में भी एक जनश्रुति है। एक बार गली से गुज़रते हुए उन्होंने एक नव-विवाहिता को अपना सिर गुंथवाते हुए देखा। बुल्लेशाह वहीं रुक गये और पूछने लगे, "सुन्दरी, तुम अपने बाल क्यों गुंथवा रही हो? उसने कन्या-सुलभ सादगी से कह दिया कि "मैं अपने पति को रिझाने के लिए यह श्रृंगार कर रही हूं।" यह सुनते ही बुल्लेशाह कहने लगे कि "ए सखी, तुम मेरे भी केश संवार दो, मुझे भी अपने शौहर को प्रसन्न करना है।" बुल्लेशाह केश गुंथवाकर नाचते-गाते अपने मुर्शिद की ओर चल दिये।

बुल्लेशाह की वाणी में मुर्शिद के प्रेम और महिमा के भावपूर्ण वर्णनों में मस्ती भी है, रंगीनी भी है ख़ुमारी भी है और कृतज्ञता भी है। उन्होंने अपने मुर्शिद को सच्चा आरिफ (ब्रह्मज्ञानी), रूह का मालिक और लोहे को सोना बनाने वाला पारस कहा है। बुल्लेशाह ने बड़ी निडरता से यह बात कही है कि पूर्ण सतगुरु चाहे कितनी ही छोटी जाति का क्यों न हो, उनका पल्ला कसकर पकड़ लेने से जीव का पार उतरना संभव है। यह ऐसा धमाका था, जिसने चारों ओर हलचल मचा दी।

प्रेम का अभ्युदय आनन्दमय तो होता है किंतु इसका मार्ग बहुत विषम एवं मंज़िल बहुत दूर होती है। प्रेममार्ग में छोटी-सी नासमझी या भूल नाराज़ी का कारण बन सकती है और मुसीबतों के पहाड़ों का सामना होता है। बुल्लेशाह की छोटी-सी भूल के कारण उनका मुर्शिद जब नाराज़ हो गया तो मुर्शिद ने 'बुल्लेशाह की क्यारियों' की तरफ़ से अपनी कृपा का पानी मोड लिया।' बुल्ले के लिए मानो प्रलय आ गई। अन्दर का पर्दा बन्द हो गया। प्रकाश अन्धकार में. आनन्द शोक में बदल गया। जो एक बार आंतरिक आनन्द से उन्मत्त हो चुका हो, उसे अकस्मात् आई शून्यता कितना साल सकती है, यह भुक्तभोगी ही जान सकता हैं।

बुल्लेशाह अपने मुर्शिद के पास दौड़ा-दौड़ा गया लेकिन उन्होंने मुंह मोड़ लिया और डेरा छोड़कर जाने को कह दिया। शिष्य के लिए

भीषण सन्ताप की घड़ी आ गई। वह पश्चात्ताप और विरह की आग में तड़पने लगा। बुल्लेशाह की काफ़ियों में इस विरहावस्था के बहुत ही भावपूर्ण वर्णन मिलते हैं। भाव की तीव्रता, वास्तविकता, सोज़ और तड़प में ये काफ़ियां बेजोड़ हैं।

मुर्शिद ने जब देखा कि पश्चाताप और वियोग की अग्नि में तपकर बुल्ले सुच्चा कुन्दन बन गया है, तो उसकी ग़लती क्षमा कर दी और हृदय से लगा लिया। फिर क्या था, गुरुकृपा के झरने दोबारा फूटने लगे। बुल्ले की सूखी क्यारी को पानी मिला। उसकी बगीची महक उठी और उसमें रस एवं आनन्द की सुगन्ध के फ़व्वारे फूट पड़े। बुल्लेशाह की आत्मा सतगुरु की आत्मा के रंग में डूब गई, दोनों में कोई भेद नहीं रहा। इस अभेद की अवस्था में बुल्लेशाह कह उठे :

रांझा-रांझा करदी नी मैं आपे रांझा होई।
रांझा मैं विच मैं रांझे विच होर ख़याल ना कोई ॥

मुर्शिद और परमात्मा में अभेद होता है इसलिए मुर्शिद-मुरीद की अभेदता ही परमात्मा से अभेदता बन जाती है। इसी अवस्था में बुल्लेशाह कह उठे हैं—"तूंहीउं हैं मैं नाहीं वे सजना, तूंहीउं हैं मैं नाहीं।" इस अवस्था में पहुंचकर बुल्लेशाह प्रम, क्षमा और दया की प्रतिमूर्ति और समदर्शी बन गया। वह मित्र-शत्रु, भले-बुरे और हिन्दू-मुसलमान सबसे एक जैसा प्रेम करने लगा।

पंजाब में सूफी कवियों की लम्बी परम्परा है। किन्तु, किसी अन्य सूफ़ी कवि द्वारा अपने मुर्शिद के प्रति ऐसी अनन्य श्रद्धा अभिव्यक्त नहीं की गई है। बुल्लेशाह अपने मुर्शिद को शौह, सजण, यार, हादी, साईं, आरिफ़, रांझा आदि अनेक नामों से याद करते हैं।

पंजाब के सूफ़ी पंजाबी लोक-संस्कृति में पूरी तरह रसे-बसे हैं। उन्होंने ठेठ पंजाबी मुहावरे में अपने-आप को अभिव्यक्त किया जबकि पंजाब के गुरु साहिबान हिन्दी और सधुक्कड़ी भाषा में भी अपना संदेश देते थे। पंजाबी सूफ़ियों ने न केवल ठेठ पंजाबी भाषा की छवि ज्यों की त्यों बनाये रखी, बल्कि उन्होंने पंजाबियत, विशेषतः उसकी लोक-संस्कृति, को भी भली प्रकार सुरक्षित रखा। 'चर्खा' उनका प्रमुख प्रतीक था और

रांझा उनका नायक। बुल्लेशाह का रांझे के प्रति विशेष मोह है। कभी उन्हें रांझे में अपने मुर्शिद का दीदार होता है तो कभी स्वयं खुदा का। वे कहते हैं कि मुझे चाहिये केवल एक रांझा, वह रांझा जो वेले में भैंसें चराता है, लेकिन पता नहीं, मुझे क्यों छोड़ जाता है।

इक रांझा मैनूं लोड़ीदा
× × ×
आप छिड़ जांदा नाल मज्झीं दे
सानूं क्यों बेलिओं होड़ीदा

हीर का विवाह हो जाने पर रांझा जोगी का रूप बनाकर उसे ढूंढ़ने जाता है। बुल्लेशाह को रांझा का जोगी-रूप विशेष रूप से प्रिय है। उसके कानों में पड़ी बालियां और गले की माला उसकी लोक-संस्कृति की निशानियां है। इस जोगी की जोगिन बनना और उसकी सेवा में अपने-आप को समर्पित कर देना ही बुल्लेशाह का परम ध्येय था। उनका कथन है :

रांझा जोगीड़ा बन आया।
वाह सांगी सांग रचाया॥
× × ×
इस जोगी दी की निशानी,
कन्न विच मुन्दरां गल विच गानी
सूरत उस दी यूसफ़ सानी
उस अलफ़ों अहद बणाया नो।
रांझा जोगो ते मैं जुगियानो,
उसदी ख़ातर भरसां पानी,
एवें पिछली उमर विहाणी
उस हुण मैनूं बरमाया नी।

(रांझा जोगी का रूप बनाकर आया है। उसका क्या अनुपम रूप है! वह जोग का रूप बनाकर आया है।

× × ×

इस जोगी की निशानी क्या है ? इसके कानों में मुद्रिकायें पड़ी हैं, और गले में माला है। उसका रूप ऐसा है मानो वह दूसरा यूसुफ़ हो। उसने अलिफ़ को अहद बना दिया है। रांझा जोगी है और मैं उसकी जोगिन हूं, मैं उसकी पनिहारन बन जाऊंगी, उसकी खातिर पानी भर-भर कर लाऊंगी। पहले की आयु तो व्यर्थ ही बीत गई लेकिन अब उसने मुझे पूरी तरह अपने वश में कर लिया है।)

पंजाब की लोक-संस्कृति में चर्खे का विशेष स्थान है। उस ज़माने में अविवाहित लड़कियां मिलकर चर्खा काता करती थीं। सामूहिक रूप से चर्खा कातने वाली लड़कियों की टोली को 'त्रिजण' कहा जाता था। चर्खा कातने से जो सूत तैयार होता था, उससे कातने वाली लड़की का दहेज तैयार किया जाता था। इस दहेज के कारण वे ससुराल में सम्मान प्राप्त करती थीं। बुल्लेशाह ने चर्खे को अपनी रचनाओं में प्रमुख प्रतीक के रूप में प्रयोग किया है। उनके अनुसार यह संसार 'त्रिजण' है जिसमें लोग एक-दूसरे के सहयोग से 'पुण्य' कमाते हैं। ससुराल परलोक है। उस परलोक में वे पुण्य काम आते हैं जो व्यक्ति इस लोक में कमाता है।

इस विषय में बुल्लेशाह की रचना है :

कत्त कुड़े ना वत्त करे
× × ×
जे पूणी-पूणी कत्तेंगी
तां नंगी मूल न वत्तेंगी
× × ×
जे दाज-विहूणी जावेंगी
तां किसे भली न भावेंगी
ओत्थे शौह नूं किवें रीझावेंगी
कुझ लै फकरां दी मत्त कुड़े।

(अरी कुछ कात ले, खाली बातें ही मत करती रह।

× × ×

यदि एक-एक पूनी कातोगी तो तुम्हें ससुराल में नंगी नहीं जाना पड़ेगा ।

× × ×

यदि तुम दहेज के बिना ही वहां जाओगी तो ससुराल में किसी को भली न लगोगी । ऐसी अवस्था में अपने पति को प्रसन्न कैसे करोगी ? अरे फ़क़ीरों से कुछ तो सीख ले लो ।)

सूफ़ी फ़क़ीर अनुभवी सिद्ध लोग थे । थोथे धर्म से उन्हें वितृष्णा थी ! लोक-संस्कृति मुख्यतः बोल-संस्कृति है । इल्म, ज्ञान, पोथी, ग्रंथ के लिए लोक-संस्कृति में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है । सन्त कबीर ने अपने युग के पंडित से कहा : तू तो पोथी में लिखी बातें कहता है किन्तु मैं जो कहता हूं वह अनुभव की कसौटी पर कसी स्वानुभूत बात कहता हूं (तू कहता पोथी की लेखी । मैं कहता आंखन की देखी) । गुरु नानक ने भी कहा है कि भले ही सारी उम्र पढ़ते रहो, भले ही अपने सभी श्वास पढ़ाई में लगा दो लेकिन सार्थक बात तो एक ही है, हरि का स्मरण, शेष सब अहंकार है, सिरखपाई है :

पडीऐ जेती आरजा पडीए जेते सास
नानक लेखे इक गल होर हउमै झरवणा झाख

बुल्लेशाह ने भी अपने अनुभव पर बहुत बल दिया । वे सिर्फ़ पोथियों के ज्ञाता विद्वानों की भर्त्सना करते रहे । वे कभी कहते कि 'इक अलिफ़ पढ़ो छुटकारा है' ('अल्लाह' शब्द का प्रथम अक्षर 'अलिफ़' पढ़ लो, इसी में मुक्ति है) तो कभी कहते : 'पोथियां पढ़ना बन्द करो, यार; तुम्हें तो एक अलिफ़ अक्षर की ही जरूरत है ।' (इलमों बस करीं ओ यार, इक्को अलफ़ तेरे दरकार ।) उनका दृढ़ मत था कि अन्तर्जातीय अथवा सम्प्रदायों के बीच होने वाली कलह का मुख्य कारण या तो पंडित लोग हैं या उनकी पोथियां :

होर न सबमें गल्लड़िया
अल्ला अल्ला दी गल्ल,

कुझ रौला पाया आलमां
कुझ काग़ज़ां पाया भल्ल

(और सारी बातें तो नगण्य हैं, महत्त्वपूर्ण बात तो बस भगवान् की बात ही है। कुछ शोर तो ये विद्वान् कर रहे हैं और कुछ पागलपन इन काग़ज़ों (पोथियों के पन्नों) ने पैदा किया हुआ है।)

बुल्लेशाह को पोथियों की तुलना में अपना गुरु, अपना मुर्शिद अथवा अनुभवी पुरुष विशेष प्रिय था। वे लोकमार्ग को ही ख़ुदा तक पहुंचने की एकमात्र राह मानते थे।

लोक-संस्कृति मूलतः अद्वैतवादी संस्कृति है जिसमें एक मालिक ही आराधना योग्य है। बुल्लेशाह सर्वधर्मसमभाव में विश्वास करते हुए मानवीय एकता के पक्षधर थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्पष्ट कहा है कि 'मैं न हिंदू हूं न मुसलमान, न मोमिन, न काफ़िर। मैं सुन्नी भी नहीं और शिया भी नहीं। मैंने सुलहकुल का मार्ग अपना लिया है।' वे मन्दिर अथवा मस्जिद में जाने की बजाए लोगों के बीच रहना पसन्द करते थे। धर्म संगठित होकर जब संप्रदाय का रूप ले लेता है तो उसके उस स्वरूप से उन्हें घृणा थी :

धरमसाल धड़वाई बसदे, ठाकर द्वारे ठग्ग
विच मसीते रहंणा कुसीले आशिक़ रहण अलग्ग।

(धर्मशाला में धड़वाई (तोलने वाले दुकानदार) रहते हैं और ठाकुर-द्वारों में लुटेरे बसे हुए हैं। मस्जिदों में वे बसते हैं जो वहां रहने के बिलकुल भी योग्य नहीं हैं। भगवान के प्रेमी तो इन सबसे अलग ही रहते हैं।)

पाखंड का विरोध

तत्कालीन संतों और गुरुओं के समान सूफ़ी फ़क़ीर बुल्लेशाह भी धार्मिक पाखंड के सख़्त विरोधी थे। धर्म के नाम पर लोगों पर अत्याचार करने वालों, झूठी क़समें खाने वालों, दिखावे के लिए तौबा करने वालों के वे घोर विरोधी थे। इस विरोध को उन्होंने कड़े शब्दों में अभिव्यक्त

भी किया। सूदखोरी को वे इस्लाम-विरोधी मानते थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि सूदखोर मुसलमान नहीं हो सकता। पाखंडियों और अत्याचारियों के लिए न तो इहलोक में सुख है, न परलोक में। बुल्ले-शाह उन गिने-चुने खुदापरस्तों में से थे जो निर्भय होकर सामाजिक कुकृत्यों का खंडन करते थे। इस सम्बन्ध में उनकी एक काफ़ी द्रष्टव्य है जिसमें उनकी वाणी ओजमयी हो उठी है :

तौबा मत कर यार कैसी तौबा है ?
नित पढ़ना एं इसतग़फ़ार। कैसी तौबा है एह यार।

× × ×

मूंहों तौबा दिलों न करदा
इस तौबा दी तरक न करदा
किस ग़फ़लत ने पाइओ परदा
तैनूं बख़्शे क्यों गफ़्फ़ार।
सावीं दे के लवें सवाई
डिओढ़ियां तक बाज़ी लाई
मुसलमानी ओह कित्थों आई
जिसदा होवे इह शिकार।

(तौबा मत कर प्यारे, ऐसी तौबा से क्या लाभ? मुंह से तो तुम प्रतिदिन बार-बार कहते हो 'इस्तग़फार' (तौबा, क्षमा), इससे क्या होगा?

मुंह से तो तौबा करते हो मगर दिल से नहीं करते। बार-बार तौबा करने पर भी त्याज्य को त्यागते नहीं। तुम्हारे मन पर किस लापरवाही का परदा पड़ा हुआ है? भला क्षमाशील भगवान् तुम्हें क्यों क्षमा करें?

× × ×

जो बराबर देकर उसके बदले में सवाया प्राप्त करता है और ड्योढ़ा वसूल करने पर जिसकी नज़र है जिसका चलन ऐसा हो उसे सच्चे मुसलमान का जीवन कैसे प्राप्त हो सकता है?

खुदापरस्ती में विनम्रता और दोस्ती में बेबाकी ये दोनों विशेषताएं बुल्ले शाह के कलाम में समानान्तर चलते हैं ।

'हाल' की अवस्था का 'इश्क़'

बुल्लेशाह के कलाम की एक विशेषता है उन्माद की दशा तक पहुंचा हुआ 'इश्क़' । यों तो सभी सूफ़ी सन्त ख़ुदा के आशिक़ हैं । मगर बुल्लेशाह 'हाल' की अवस्था में पहुंच चुके थे । वह नाचता है बेख़ुदी के आलम में और गाता है तो अपने-आप को भूलकर । जिन्होंने शाह इनायत के मज़ार की ज़ियारत की है, वे जानते हैं कि वहां ज़ायरीन कैसे उन्मत्त भाव से नाचते हैं, गाते हैं, अपने-आप से बेगाना होकर । बुल्लेशाह सदैव आत्म-विस्मृति की अवस्था में रहते थे । यदि आत्मा का मिलन भगवान् से हो जाये तो आत्मानुभूति संभव है । भगवान् से बिछड़े रहने की चेतना तीव्र आत्म-विस्मृति की अवस्था में पहुंचाती है । बुल्लेशाह की रचना में ख़ुदा के बिछोह की तीव्रतम अनुभूति देखने को मिलती है । वे कहते हैं कि संसार स्वप्न है और जीवन एक लम्बा बिछोह । माया के पदार्थ चोर-डाकू हैं जो प्रतिदिन उसका आत्म-धन लूटते हैं :

अंदर ख़्वाब विछोड़ा होया
ख़बर न पैंदी तेरी
सुज्जी बन विच लुट्टी साइयां
चोर-शंग ने घेरी

(स्वप्न में हम एक-दूसरे से बिछुड़ गए हैं, अब पता ही नहीं चलता कि तुम कहां हो । मेरे स्वामी, मैं बन में अकेली हूं और लुट रही हूं । चोरों-डाकुओं ने मुझे घेर रखा है ।)

सूफ़ी संत परम्परा

समूचा सूफ़ी-साहित्य 'इश्क़' को समर्पित है । पंजाबी सूफ़ी परम्परा

ने पहले कवि हैं शेख फ़रीद। उन्होंने उत्कट 'इश्क़' की अभिव्यक्ति यों की :

अज न सुत्ती कंत सिउ अंग मुड़े मुड़ि जाइ।
जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि विहाइ॥

(मैं आज आपने कंत के साथ नहीं सोई। मेरे अंग मुड़-मुड़ जा रहे हैं। जाकर किसी दुहागिन से पूछो कि तुम्हारी रात कैसे कटती है।)

फरीदा गलीए चिकड़ि दूरि घरा नालि पिआरे नेहु।
चला त भिज्जै कंबली रहां त तुट्टै नेहु॥

(वर्षा हो रही है, गली में कीचड़ है और प्रिय का घर दूर है, किन्तु मुझे अपने प्रिय से प्रेम है। चलूं तो मेरा कंबल भीगता है और अगर न चलूं तो मेरा प्रेम टूटा जाता है।)

फ़रीद के बाद पंजाब के सूफ़ी कवि शाह हुसैन बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। उन्होंने भी प्रेमी की विरहावस्था का बहुत सटीक वर्णन किया है। वे कहते हैं :

सजण बिन रातां होइआं वड्डियां
मास झड़े, झड़ पिंजर होया
खड़कण लगियां हड्डियां
अश्क छपायां छपदा नाहीं
बिरहों तणावां गड्डियां
कहै क़फ़ीर हुसैन साईं दा
कमली कर-कर छड्डियां

(प्रिय के विना रातें बहुत ही लम्बी हो गई हैं। शरीर का सारा मांस झड़ गया है और काया अस्थि-पंजर मात्र रह गई है। आंसू भी छुपाए से छुपते नहीं, अविरल बहते रहते हैं, विरह ने तनावें कस रखी हैं। अल्लाह का फ़क़ीर शाह हुसैन कहता है कि इश्क़ ने तो हमें अपना दीवाना बनाकर छोड़ दिया है।)

इन्हीं आशिक फ़कीरों के पदचिह्नों पर चलते हुए बुल्लेशाह ने इश्क के उन्मादी स्वरूप का वर्णन किया है। इश्क़ के इस पड़ाव पर पहुंचा फ़क़ीर पूर्ण रूप से अद्वैती होता है। उसे ईश्वर के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही नहीं देता। बुल्लेशाह भी ईश्वर-प्रेम के इसी पड़ाव पर पहुंचा हुआ फ़क़ीर है। उसके लिए ईश्वर और अनीश्वर के बीच अन्तर मिट गया है। वहदत, एकता, अद्वैत उसके जीवन और रचना का परम मूल्य है। कुछेक उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो सकेगी :

सब इक्को रंग कपाई दा
× × ×
रूड़ी उत्ते गद्दों चारे
ओह भी वागी गाई दा।

(सभी रंगों के वस्त्र उस कपास से ही बनते हैं। हर रंग का वस्त्र मूलतः कपास का ही है।)

× × ×

गन्दगी के ढेर पर जो गधे चरा रहा है, वह भी गौ चराने वाले से भिन्न नहीं है, दोनों ही उस परमात्मा के बंदे हैं।)

कहुं बैर पड़ा कहुं बेली है
कहुं मजनूं है कहुं लेली है
कहुं आप गुरु कहुं चेली है
आप आपका पंथ बताया है

(स्वयं प्रभु कहीं बैर करता है और कहीं स्वयं मित्र है। कभी वह मजनूं नजर आता है तो कभी लैला। वही स्वयं गुरु है और शिष्य भी है। वह स्वयं अपने-आप को अपने ही पंथ का परिचय देता है। अर्थात् सारा उसी का पसारा है।)

वहदत के इस अनुभव का ही कमाल है कि कभी-कभी पता नहीं चलता कि बुल्लेशाह ईश्वर के प्रति अपना प्रेम निवेदित कर रहे हैं अथवा किसी मानव के प्रति। सूफ़ी लोग इश्क़ मजाजी (इहलौकिक प्रेम) और

इश्क़ हक़ीक़ी (पारलौकिक प्रेम) की विभाजक रेखाएं पार कर जाते हैं। इस संदर्भ में प्रसिद्ध सूफ़ी शायर 'इब्न अरबी' का स्मरण हो आता है। वह अपनी प्रेमिका 'शम्सी' के प्रेम में आसक्त होकर रचनाएं करता और उसकी व्याख्या यों कर देता जैसे वे ईश्वर के प्रति निवेदित हैं। कभी-कभी ईश्वर और मानव से परे सूफ़ी लोग शुद्ध सौन्दर्य लोक में प्रवेश कर जाते हैं। प्रेम की पराकोटि के ऐसे दृश्य बुल्लेशाह की कविता में भी मिलते हैं :

अद्धी रात लटकदे तारे
इक लटके इक लटकणहारे
मैं उठ आई नदी किनारे
पार लंघण नूं खली आं।

(आधी रात का समय है। तारे लटक रहे हैं। कुछ एक लटक चुके, कुछ एक लटकने शेष हैं। मैं उठकर नदी किनारे आ गई हूं और मैं नदी के पार जाने की प्रतीक्षा में खड़ी हूं।)

आजिज़ी अथवा विनम्रता बुल्लेशाह के इश्क़ का मुख्य आधार लक्षण है। वे अपनी वाणी में जितने बेबाक अथवा निर्भय हैं, उतने ही विनम्र भी। कभी-कभी वे अपने-आप को कुत्तों से भी हीन समझते हैं और कभी भंगिन बनकर अपने प्रिय का दरबार बुहारना चाहते हैं। उनका सोचना है कि कभी चूल्हा बनकर तपना चाहिए ताकि फ़क़ीरों के लिए भोजन पकाया जा सके। कभी उनके मन में निकृष्ट पत्थर बन जाने की इच्छा जाग उठती है ताकि लोग उस पर अपने पांव रगड़कर उन्हें साफ कर सकें। प्रामाणिक इश्क़ की पहचान, अहम् का विनाश है। बुल्लेशाह अहं-भरी दुनिया को देखकर दुःखी भी हैं और उस पर उन्हें हंसी भी आती है। वे संसार की वस्तु को मिट्टी समझते हैं। वे इस संसार के कलह-क्लेश को मिट्टी की मिट्टी से लड़ाई के रूप में देखते हैं और सावधान करते हैं कि जो कुछ संसार में दिखाई दे रहा है, वह चार दिनों की मिट्टी का गुलजार है :

वाह वाह माटी दी गुलज़ार ।
माटी घोड़ा, माटी जोड़ा, माटी दा असवार ।
माटी माटी नूं दौड़ावै, माटी दी खड़कार ।
माटी माटी नू मारन लागी, माटी दे हथियार ।
जिस माटी पर बहुती माटी, सो माटी हंकार ।
माटी माटी नूं देखन आई, माटी दी ए बहार ।
हस्स खेड़ फिर माटी होवे, पौंदी पांउ पसार ।

बुल्लेशाह ने जो कुछ भी लिखा अथवा कहा, 'इश्क़' के उच्च मुकाम पर पहुंचकर कहा । सूफ़ी फ़कीरों में 'इश्क़' की महिमा सर्वोपरि है । यदि मनुष्य समस्त जीवसृष्टि में शिरोमणि है अथवा 'अशरफुल मखलूकात' है तो मानव जीवन की चरम उपलब्धि 'इश्क़' है । सूफ़ी क़िस्सा लेखक मुहम्मद बख़्श का कहना है कि मानव देह पाकर भी जिन लोगों ने इश्क का व्यापार नहीं किया, उनका जन्म और जीवन व्यर्थ है, उनका अस्तित्व कुत्तों के होने से बेहतर नहीं :

जिन्हा 'इश्क़' ख़रीद न कीत्ता
ऐवें आए विगुत्ते
इश्क़े बाझों फ़रक न कोई
क्या आदम क्या कुत्ते ।।

भाषा

तसव्वुफ़ भाषा से परे है । इस मकाम पर पहुंचकर मनुष्य खामोश हो जाता है, वाणी मूक हो जाती है और वह स्वयं जीवन्मुक्त हो जाता है । फिर भी, सूफ़ी फ़कीर संसार से कटे हुए नहीं हैं । वे भले ही सांसारिक कार्य-व्यापार में स्वयं लिप्त नहीं होते, किन्तु सांसारिक लोगों के दु:ख-सुख को महसूस तो करते हैं, अत: वे उनसे बोलते-चालते हैं, उनको ढाढस बंधाते हैं । इस कार्य में भाषा का प्रयोग उन्हें करना ही पड़ता है ।

बुल्लेशाह इसके अपवाद नहीं थे। उन्होंने ठेठ पंजाबी भाषा में लिखा। उनकी पंजाबी ठेठ जनसाधारण की अथवा अवाम की भाषा है। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि बुल्लेशाह ने मुख्यत: अवाम को, सरलचित्त जनसाधारण को ही सम्बोधित किया है। इसीलिए उनकी रचना में मात्र ज्ञान का, पोथी-संस्कृति का खण्डन है। वे आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करने पर बल देते हैं। धार्मिक नेताओं—मुल्ला, पंडित आदि के साथ उनके विरोध का कारण भी यही है।

बुल्लेशाह ने अपने विचारों तथा भावों को 'काफ़ियों' के रूप में व्यक्त किया। काफ़ी वस्तुत: भक्तों के पदों से मिलता-जुलता काव्य रूप है। काफ़ियां भक्तों के भावों को गेय रूप में प्रस्तुत करती हैं इसलिए इनमें बहुत-से रागों की बंदिश मिलती है। जनसाधारण भी सूफ़ी दरवेशों के तकियों पर जमा होते थे और मिलकर भक्ति-विभोर होकर काफ़ियां गाते थे। काफ़ियों की भाषा बहुत सादी और आम लोगों के समझने योग्य है।

कुछ लेखकों की दृष्टि काव्यगत सौन्दर्य पर होती है, अत: वे अपनी भाषा को संवारने-निखारने पर बल देते हैं। काव्य-सौष्ठव उनकी काव्य-रचना का परम लक्ष्य होता है। बुल्लेशाह मात्र कवि अथवा काव्यशिल्पी नहीं थे, कवि से अधिक सूफ़ी संत थे, जो गायन-नर्तन के द्वारा अपने 'इश्क' को अभिव्यक्ति देते थे। उनका काव्य तो उनके गायन-नर्तन का सहचर मात्र था। वे गाते-नाचते भी लोक-शैली में थे और उनकी काव्य-रचना की प्रत्येक भंगिमा भी लोक-काव्यशैली की ही परिचायक है। काव्य से लोक-काव्य की भिन्नता यही है कि इसकी दृष्टि मुख्यत: अपने श्रोताओं पर होती है। उसका बल सौष्ठव पर नहीं, भावों की संचरण-शीलता पर होता है। बुल्लेशाह लोक-हृदय के इतने निकट थे कि लोगों ने इनकी रचनाओं को ख़ास अपना समझकर अपना लिया। वे बुल्लेशाह की काफ़ियां यों गाते थे जैसे वे स्वयं ही उनके रचयिता हों। बेख़ुदी के आलम में मगन होकर गाते और नाचते हुए वे अपनी सुविधा के अनुसार उसमें परिवर्तन भी कर लेते हैं। फलत: बुल्लेशाह की रचनाएं आज अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं। जो रचनाएं आज हम तक पहुंची हैं, वे

लोक-हृदय में से गुज़रकर, लोक-गायकों द्वारा परिवर्तित रूप में ही पहुंची हैं। बुल्लेशाह स्वयं में एक संस्था थे, जिसने लोक के लिए लिखा, लोक-शैली में लोक के लिए गाया और अन्ततः उनका लिखा-गाया स्वयं लोक-रूप हो गया। ठेठ भाषा में रचित उनकी वाणी उत्तरोत्तर ठेठ होती गई। सरलता, सहजता तथा गहन भाव उनकी भाषा की विशेषता थी।

कहीं-कहीं उनकी रचनाओं में 'हिन्दवी' प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इसके दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे :

(i) अब लगन लगी किह करिये
ना जा सकिये ना मरिये।
तुम सुनो हमारे बैना
मोहे रात-दिने नहिं चैना
हुण पी बिन पलक न सरिये।

(ii) पतियां लिखां मैं शाम नूं
मैंनूं पिय नज़र ना आवे।
आंगन बना डरावना
कित बिध रैन बिहावे।
पांधे पंडित जगत के
मैं पूछ रही आं सारे।
पोथी बंद क्या दोस है
जो उलटे भाग हमारे।

स्पष्ट है कि साईं बुल्लेशाह की रचना के भाषागत रूप का निर्णय बहुत कुछ उसके श्रोताओं पर निर्भर करता था। उसके श्रोता किसी एक सम्प्रदाय तक सीमित न थे। इसीलिए उनकी रचनाओं में जकरिया, मन्सूर, यूसुफ़-जुलैखा, मजनूं-लैला आदि सामी हवाले भी हैं और सतिगुरु, अनहद, श्याम आदि शुद्ध भारतीय संकेत भी। वे मन्सूर की तरह अनल-हक़ कहने की ओर उन्मुख हैं और गोपियों की तरह कृष्ण की बांसुरी सुनने के लिए भी उत्सुक हैं :

मुरली बाज उठी अनबातां
सुणकर भुल्ल गईआं सब वातां
लग गए अनहद बाण न्यारे
झूठी दुनियां कूड़ पसारे
साईं मुख वेखण बणजारे
मैंनूं भुल गइआं सब बातां।

इस प्रकार बुल्लेशाह की भाषा मध्यकाल के संतों-गुरुओं की भाषा की लीक पर चलती है। वह लोकाभिमुख, संचरणशील और श्रोताप्रिय है। उनकी काफ़ियों में अरबी-फ़ारसी के शब्द और इस्लामी धर्मग्रन्थों के भी मुहावरे मिलते हैं लेकिन कुल मिलाकर उसमें स्थानीय भाषा, मुहावरे और सदाचार का रंग ही प्रधान है। बुल्लेशाह ने अपने कलाम में अलंकार और प्रतीक पंजाबी जीवन से लिए हैं जिनमें चरखा, पूनियां, तकली, त्रिजण, पत्तन, पूर, रस्सी, घड़ा एवं घड़ोली आदि प्रमुख हैं।

तसव्वुफ़

हर व्यक्ति किसी-न-किसी दार्शनिक संस्कारों में जन्म लेता है क्योंकि हर समाज की कोई-न-कोई अचेत अव्यक्त दार्शनिक आधारभूमि होती है। लोक-संस्कृति भी दार्शनिक आधार से विहीन नहीं होती, हालांकि जनसाधारण को सुगठित दार्शनिक पद्धति से लगाव नहीं होता। बुल्लेशाह स्वयं बड़े आलिम-फाज़िल थे, किन्तु पोथी-बन्द इल्म की लीक पर चलना उन्हें पसन्द न था। वे अनुभवी गुरु की शिक्षा पर चलने के कायल थे। अध्यात्म मार्ग का अनुसरण करने के लिए गुरु से दीक्षित होना अथवा 'बैत होना' जरूरी समझते थे।

उनके गुरु शाह इनायत क़ादिरी सिलसिले से सम्बन्धित थे। क़ादिरी सम्प्रदाय के आदि प्रणेता बग़दाद के सूफ़ी संत अब्दुल क़ादिर जीलानी (१०७७-११६६ ई०) माने जाते हैं। लोग उन्हें 'पीर दस्तगीर' अथवा 'पीरान पीर' मानते थे। स्वयं बुल्लेशाह के कलाम में इसका ज़िक्र है :

पीरां पीर बग़दाद असाडा
मुर्शद तख़्त लाहौर
ओह असी सब इक्को कोई
आप गुड्डी आप डोर ।

(हमारा पीरों का पीर बग़दाद में रहता है और मुर्शिद राजधानी लाहौर में । हम सब पतंग और डोर के समान एक ही हैं ।)

भले ही क़ादिरी भी स्वयं एक विशिष्ट सिलसिला है, किन्तु क़ादिरी सूफ़ी सम्प्रदाय-भावना से मुक्त समझे जाते हैं । गुरु रामदास ने हरिमंदिर अमृतसर का नींव-पत्थर जिस सूफ़ी मियां मीर से रखवाया था, वे भी क़ादिरी सिलसिले से ही सम्बन्धित थे । औरंगजेब के सुलहकुल भाई दारा शिकोह भी क़ादिरी संप्रदाय के अनुयायी थे । दारा शिकोह के कथनानुसार क़ादिरी लोग मेष और शरा आदि पर विश्वास नहीं रखते थे । उनके अनुसार मनुष्य किसी कामिल मुर्शिद की रहनुमाई (मार्ग-दर्शन) से ही ईश्वर से मिल सकता है ।

तसव्वुफ़ अथवा सूफ़ी मत एक प्रकार की अध्यात्म साधना है । खुदा के आशिक़ मुर्शिद द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलते हैं, अपनी ख़ुदी अथवा नफ़स को फ़ना करते हैं और अल्लाताला के साथ वसाल (एकत्त्व) स्थापित करते हैं और बक़ा (हमेशगी, दवाम, अमरत्व) उनका अन्तिम लक्ष्य होता है ।

इस अवस्था में साधक अपने-आप को भगवान् का ही रूप समझता है और मन्सूर की तरह गा उठता है, अनलहक़ (मैं ख़ुदा हूं) । वस्तुतः यह आत्म-विस्मृति की अवस्था है, जहां साधक धर्म, देश, जाति आदि सभी सीमाओं को पार कर जाता है, सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है । इसी मुकाम पर पहुंचकर बुल्लेशाह गा उठा :

मैं बेकैद मैं बेकैद
ना रोगी न वैद ।
ना मैं मोमन ना मैं काफ़र
ना सैयद न सैद ।

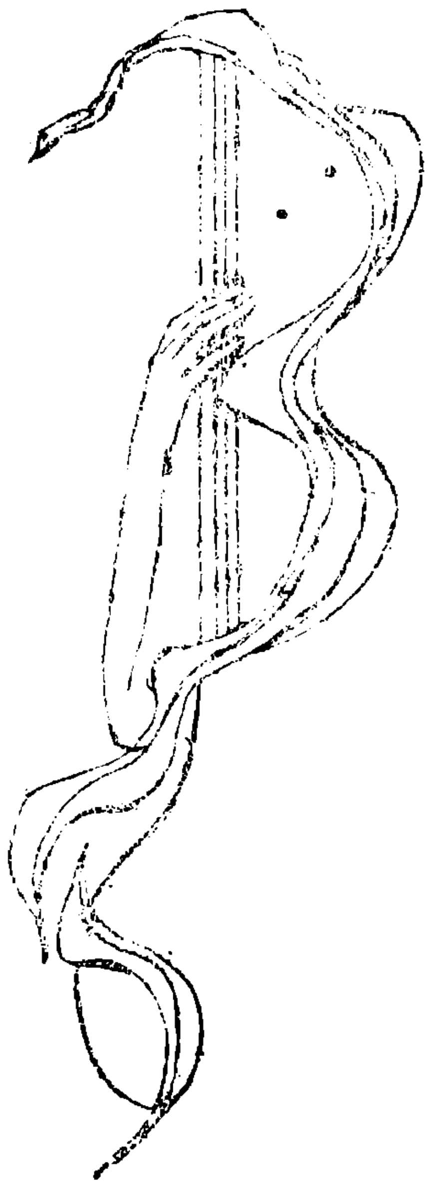
चौधीं तबकीं सैर असाडा
कित्ते न हुंदा कैद।
ख़राबात है ज़ात असाडी
ना सोमा ना ऐब।
बुल्ले शाह दी ज़ात की पुच्छणै
ना पैदा ना पैद।

बन्धनों में पड़े संसारी लोगों की ऐसे आज़ाद बन्दों से सदा तकरार चलती रहती है। 'अनलहक' कहने वाले मन्सूर को सूली पर लटकना पड़ा, सरमद को भी बादशाह का अताब-अत्याचार का सामना करना पड़ा। विडम्बना यह है कि जाति-धर्म आदि सीमाओं में बंधे लोग अपनी सीमाओं को ही परम सत्य मानने लगते हैं। उन्हें लगता है, सीमाओं को त्यागने वाले लोग जैसे उनका मुंह चिड़ा रहे हों।

बुल्लेशाह के अनुसार आदम-हव्वा, नर-नारी, माया-ब्रह्म का द्वैत, तीन गुणों, पांच तत्त्वों और देवी-देवताओं का स्वीकार निरर्थक झमेला है। जो कुछ है प्यारे में समाया हुआ है और जो कुछ है, उसमें प्यारा (परमात्मा) समाया है। इसे सूफ़ी दरवेश 'हमाओस्त' (जो कुछ है वह सब ही प्रभु है) मानते हैं बुल्लेशाह भी भूली-भटकी हीर (जीवात्मा) को चेताते हुए कहते हैं कि जिस रांझा (परमात्मा) को तू खोज रही है, वह तो तेरे अन्दर है। वे कहते हैं कि जब तक अन्दर देखने वाली आंख (ग़ैबी आंख) नहीं मिलती, अन्दर परमात्मा का दर्शन नहीं मिलता। मानव-शरीर उनके लिए ठाकुरद्वारा या हरि मंदिर है। इस ठाकुरद्वारे में अनन्त अगम अनहद नाद बज रहा है और मालिक के नूर की अगम ज्योति जल रही है। इस सच्चे हरि मंदिर में ही सर्वव्यापक प्रभु से मिलाप हो सकता है। प्रेमिका (आत्मा) और प्रियतम (परमात्मा) का मिलन न होने का कारण दोनों के बीच अज्ञान, मन और अहं का पर्दा खिचा हुआ है। जब तक आत्मा को उस दसवें द्वार (दसवीं गली) का पता नहीं मिलता, जहां प्रियतम आता-जाता है, तब तक उसका उस प्यारे से मिलाप नहीं हो सकता। इसके लिए वे कहते हैं कि 'उलटी गंग बहाइयो रे साधो, तब

हरि दर्शन पाए ।' जो लोग बाहरी दौड़-धूप छोड़कर शाहरग (सुषम्ना नाडी) में पहुंच जाते हैं, उनके लिए परमात्मा की दरगाह दूर नहीं रह जाती । जाती इस्भ या सुरत का अभ्यास करने वाले साधक शाहरग में पहुंचकर अपने अन्दर झांक लेते हैं और द्वैत से ऊपर उठ जाते हैं। बुल्लेशाह के अनुसार मालिक के सच्चे प्रेमी जीते जी मरने का अभ्यास करते हैं । वे स्वयं प्रतिदिन मरते और प्रतिदिन जीवित होते थे ।

बुल्लेशाह सभी बंधनों से पार हो गये थे । अपनी रचना को अपना समझना भी बंधनों में पड़े रहने के तुल्य है । उन्होंने अपना कलाम भी लोकार्पण कर दिया और उसे संभालने की जरूरत महसूस नहीं की । लोगों के जिह्वाग्र पर यह अनेक रूप धारण करता गया । प्रतीत होता है कि जैसे बुल्लेशाह के मार्ग पर चलने वालों ने कुछ अपनी रचनाएं भी बुल्लेशाह के नाम से मनसूब कर दी होंगी, इस कारण आज पूरे भरोसे के साथ नहीं कहा जा सकता कि कौन-सी रचना बुल्लेशाह की मूल रचना है और कौन-सी मूल का विकृत रूप अथवा क्षेपक । इस सबके बाद भी, एक बात सत्य है कि बुल्लेशाह का कलाम एक धारा है, निरन्तर प्रवाहशील और परिवर्तनशील । उनके कलाम के रूप में कालांतर में भले ही परिवर्तन कर दिया गया हो, किन्तु उसमें उनकी आत्मा अविकल बनी हुई है।



संकलन

काफ़ियां

अपणे संग रलाईं

अपणे संग रलाईं पिआरे, अपने संग रलाईं। टेक।

पहलां नेहुं लगाया सी तैं, आपे चाईं चाईं;
मैं पाया ए या तुध लाया, आपणी तोड़ निभाईं।

राह पवां तां धाड़े बेले, जंगल, लख बलाईं;
बिघने चीते ते चित्त-मचीते, बिघने रोकण राही।

हौल दिले तों थर-थर कंबदा, बेड़ा पार लंघाईं;
बल्ल्हे शाह नूं शोह दा मुखड़ा घुंघट खोल दिखाईं।

अपने संग मिला ले

अध्यात्म-यात्रा के कष्टों का वर्णन करते हुए शिष्य सतगुरु से निवेदन करता है कि हे प्यारे, मुझे अपने से मिला ले, पूर्णतः अपने साथ। पहले तो स्वयं तुम्हीं ने बड़े चाव से प्रेम किया था। अब चाहे यह प्रेम मैंने किया या तुमने मुझे लगा दिया (इस झगड़े को भूलकर) तुम अपनी कृपा से अन्त तक उस प्रेम को निभाते रहना। इस प्रेम-मार्ग में बहुत विघ्न हैं; राह में डाकू हैं, जंगल है और लाखों भयानक जानवर हैं; चीते और तेन्दुए विघ्नकारी बनकर राह रोके खड़े हैं। मेरा हृदय भय से थर-थर कांप रहा है। आप कृपा करके मेरी नैया पार लगा देना। बुल्लेशाह को अपने शौह (पति, परमात्मा) का घूंघट हटाकर मुखड़ा दिखा देना।

अपणा दस्स टिकाणा

अपणा दस्स टिकाणा, किधरों आया किद्धर जाणा। टेक।

जिस ठाणे का माण करें तूं,
ओह्ने नाल ना जाणां।
ज़ुल्म करें ते लोक सतावें,
कसब फड़िओ लुट खाणा।
कर लै चावड़ चार दिहाड़े,
ओड़क तूं उठ जाणा।
शहर ख़मोशां दे चल बसिये,
जित्थे मुलक समाणा।
भर-भर पूर लंघावे डाह्डा,
मलकुलमौत मुहाणा।
एहनां समनां चौं है बुल्ला —
औगुणहार पुराना।

अपना ठिकाना बता

हे जीव, बता तेरा ठिकाना कहां है, किधर से आये हो और किधर जाना है। तुम्हें जिस ठिकाने का गर्व है, वह तुम्हारे साथ (परलोक) नहीं जाएगा। तुम अत्याचार करते हो, लोगों को सताते हो, लोगों को लूट-कर खाना तुमने अपना पेशा बना रखा है, अरे भाई भले ही तुम चार दिन अहंकार कर लो, लेकिन आखिर में तुम्हें इस दुनिया से उठ ही जाना है, चलो हम भी शहर खमोशां (क़ब्रिस्तान) में चलकर बसते हैं, (क्योंकि एक दिन) सारा संसार उसी में समा जाएगा, मौत का फ़रिश्ता बहुत निर्मम मल्लाह है, वह क़श्ती भर कर लोगों को इधर (इह लोक) से उधर (परलोक) ले जाता है। बुल्लेशाह इन सभी से कहीं पुराना अव-गुणों से भरा बंदा है।

अब तो जाग

अब तो जाग मुसाफ़र प्यारे,
रैन गई लटके सब तारे। टेक।

आवागौन सराईं डेरे,
साथ तिआर मुसाफ़र तेरे,
अजे न सुणिओं कूच नगारे।

कर लै अज करनी दा बेरा,
मुड़ ना हो सी आवण तेरा,
साथी चल्लो पुकारे।

मोती, चूनी, पारस, पासे,
पास समुंदर मरो पिआसे,
खोल्ह अक्खीं उठ बौह बेकारे।

बुल्ल्हा शौह दे पैरीं पड़िये,
ग़फ़लत छोड़ कुझ हीला करिये,
मिरग जतन बिन खेत उजाड़े।

अब तो जाग

प्यारे मुसाफ़िर, अब तो जाग जा। रात बीत गई है और सभी तारे लटक चुके हैं (छिप चुके हैं), जीवन तो आना और जाना है। इस संसार में रहना सराय (मुसाफ़िरख़ाने) में टिकने जैसा है। तेरे साथ और भी कई मुसाफ़िर (चलने के लिए) तैयार बैठे हैं, क्या तूने अभी तक कूच-नक़्क़ारे की आवाज नहीं सुनी ?

तेरा यह समय कुछ कर डालने का समय है, इसलिए उत्तम करनी कर ले। तुझे यहां दोबारा आने का अवसर नहीं मिलेगा। तेरे साथी बार-बार पुकारकर कह रहे हैं कि 'चलो, चलो।' चलने के समय अर्थात् मृत्यु आने पर मोती, अन्न या पारस मणि सब पड़े रह जायेंगे, (किन्तु तेरे किसी काम न आयेंगे) जैसे पास ही समुद्र हो, किन्तु प्यासे के किसी काम न आये। अरे निकम्मे, (अब भी) आंखें खोल ले। बुल्लेशाह कहते हैं, शौह (प्रिय, पति, परमात्मा) के चरणों में खुद को डाल दे, ग़फ़लत (ऊंघ, लापरवाही) छोड़कर भले काम के लिए कुछ उद्यम कर। यदि तू सावधान रहकर यत्न नहीं करेगा तो मायामृग तेरे खेत को उजाड़ जाएगा।

अम्मा-बाबे दी भलिआई

अम्मा-बाबे दी भलिआई,
ओह हुण कम्म असाडे आई। टेक।
अम्मा-बाबा चोर धुरां दे,
पुत्तर दी वडिआई,
दाणे उत्तों गुत्त-बिगुत्ती,
घर-घर पई लड़ाई।
असां कज़िये ताहीं जाले,
जद कणक ऊन्हां टरकाई।
खाए ख़ैरा ते फाटिये जुम्मा,
उलटी दस्तक लाई।
बुल्ल्हा तोते मार बागां चौं कड्ढे,
उल्लू रहण उस जाई।

मां-बाप की शराफ़त

यह काफी व्यंग्यपरक है जिसकी मूल ध्वनि यह है कि करता कोई है और भरता कोई है। हमारे मां-बाप कितने भले थे कि उनकी भलमनसाहत हमारे काम आ रही है यानी हमारे पूर्वज आदम और हव्वा ने जो कुछ किया उसका फल आज सारी मानव जाति को भुगतना पड़ रहा है। हमारे मां-बाप ने आदिमकाल में ही चोरी की, यही तो पुत्र के बड़प्पन का आधार है यानी चोर मां-बाप का पुत्र होने में गर्व कैसा ? दाने-दाने की ख़ातिर हम एक-दूसरे की चोटी नोचते हैं जिससे घर-घर में कलह है। यानी आदम और हव्वा द्वारा गेहूं की चोरी करने का फल आज यह है कि मानव जाति में व्यापक वैमनस्य बना हुआ है। उन्होंने गेहूं चुराया और उसके कारण मानव जाति आज तक क्लेश में फंसी हुई है। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ है कि गुनाह तो ख़ैरा करता है और सज़ा जुम्मा पाता है, कैसा उलटा न्याय है। बुल्लेशाह कहता है कि तोते तो बाग़ में से निकाल दिये गये हैं, अब तो वहां उल्लू बसते हैं।

असां मरना नाहीं

साडे वल मुखड़ा मोड़ वे प्यारिआ,
साडे वल मुखड़ा मोड़। टेक।

आपे पाइया कुंडियां तैं,
ते आपे खिचदा एं डोर।

अर्श कुर्सी ते बांगां मिलियां,
मक्के पै गिआ शोर।

बुल्ल्हे शाह असां मरना नाहीं।
मर जावे कोई होर।

हम मरेंगे नहीं

इस छोटी-सी भावमय काफ़ी में बुल्लेशाह अपने प्रियतम से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रिय, हमारी ओर मुख मोड़ो अर्थात् हम पर कृपादृष्टि करो। आप स्वयं ही तो हमें कुंडी (मछली पकड़ने की बंसी के कांटे) में फंसाते हो और स्वयं ही उसकी डोरी खींचते हो। गगनमंडल में अजान होने लगी है और उसकी ध्वनि मक्के तक पहुंची।[1] बुल्लेशाह कहते हैं कि हमें नहीं मरना (क्योंकि हम तो प्रिय रूप हो चुके हैं) भले ही कोई और मर जाए।

---

१. बुल्लेशाह ने क़ुरान शरीफ़ की आयतों के संदर्भ में इसे 'गंज मखफ़ी की बांसुरी' अर्थात् परमात्मा रूपी गुप्त ख़ज़ाने की शब्द-ध्वनि भी कहा है। इसी को उन्होंने लामकान की पटडी पर बैठकर बज़ाने वाला नाद भी कहा है और इसे ही अर्शो क़ुर्सी (गगनमंडल) की बांग का नाम दिया है।

साईं बुल्लेशाह : राधा स्वामी सत्संग व्यास, पृष्ठ १०६

इक्को रंग कपाई दा

सब इक्को रंग कपाई दा,
इक आपे रूप वटाई दा। टेक।

अरूड़ो ते जो गदों चरावें,
सो भी वांगी गाईं दा।

सभ नगरां विच आपे वस्से,
ओहो मेहर गराईं दा।

हर जी आपे हर जा खेले,
सदिआ चाईं चाईं दा।

बाग़ बहारां तां तूं वेखें,
थीवें चाक अराईं दा।

इश्क मुश्क़ दी सार की जाणे,
कुत्ता सूर सराईं दा।

बुल्हा तिस नूं वेख हमेशा,
इह है दर्शन साईं दा।

एक ही रंग है कपास का

सब कपास का एक ही रंग है। अलग-अलग रंगों का कपड़ा कपास से ही बनता है। इस प्रकार एक कपास ही (भिन्न-भिन्न) रूप बदलती रहती है। अर्थात् सबकी आत्मा एक ही है। गंदगी के ढेर पर गधे चराने वाला उस गौ चराने वाले से भिन्न नहीं है। सभी नगरों में रहने वाला

वह परमात्मा स्वयं ही है और गांवों पर कृपा करने वाला भी वही है। हर जीव में, हर स्थान पर, वही तो खेल रहा है। वह बुलाया गया तो खुश होकर चला आया है। यदि तुम बाग़-बहार देखना चाहते हो अर्थात् प्रसन्न जीवन व्यतीत करना चाहते हो तो अराईं (मुर्शिद शाह इनायत क़ादिरी) के सेवक (मुरीद) बन जाओ।

सराय का कुत्ता या सुअर (अर्थात् जो परमात्मा को पाने का साधन नहीं करता) इश्क़ का रहस्य क्या जाने ?

बुल्लेशाह का कहना है कि हर जीव में सदा उसको देखो। उस परमात्मा (स्वामी) के दर्शन करने का यही मार्ग है।

इक रांझा मैनूं लोड़ीदा

इक रांझा मैनूं लोड़ीदा। टेक।

कुन फ़यकुन[1] अग्गे दीआं लग्गीआं।
नेहुं न लगड़ा चोरी दा।

आप छिड़ जांदा नाल मज्झीं दे,
सानूं क्यों बेलिओं होड़ीदा?

रांझे जेहा मैनूं होर न कोई,
मिन्नतां कर कर मोड़ीदा।

मान वालियां दे नैंन सलोने,
सूहा दुपट्टा गोरी दा।

अहद अहमद विच फ़रक न कोई,
इक रत्ती भेत मरोड़ी[2] दा

एक रांझा मैनूं लोड़ीदा

मुझे एक रांझे की जरूरत है

आत्मा-परमात्मा के आदिकाल से चले आ रहे प्रेम वर्णन करते हुए इस काफ़ी में कहा गया है कि मुझे केवल एक रांझा (सतगुरु) मेरा प्रिय चाहिए।

---

१. क़ुरान शरीफ़ की आयत है कि ख़ुदा ने कहा हो जा (कुन) और हो गया (फ़यकुन)

२. फ़ारसी में 'अहद' शब्द में मीम की थोड़ी-सी मरोड़ी लगा देने से अहमद बन जाता है।

संसार-उत्पत्ति से पहले से ही मुझे उससे प्यार था और हमारा वह प्यार चोरी-छिपे का नहीं, विश्वविदित है। वह रांझा आप तो चला जाता है भैंसे चराने तब हमें अकेले जाने से क्यों रोकता है? रांझे के समान हमें कोई नहीं जंचता (कोई सदगुरु जैसा नहीं); जब वह जाने लगता है तो हम मिन्नतें करके उसे रोकते हैं। मानिनी के नयन सलोने हैं और उस गोरी के सिर पर गहरा लाल (प्रेम रंग) दुपट्टा है।

अहद (अल्ला) और अहमद (मुर्शिद) में कोई अन्तर नहीं; बस मीम की एक मरोड़ी भर का अन्तर है। मुझे तो बस एक मात्र रांझा; चाहिए जो मेरा प्रिय है; प्रियतम है।

इक अलफ़ पढ़ो छुटकारा ए

इक अलफ़ पढ़ो छुटकारा ए। टेक।

इक अलफ़ों दो तिन चार होए,
फिर लख करोड़ हज़ार होए,
फिर ओथों बाझ शुमार होए,
हिक अलफ़ दा नुक़ता न्यारा ए।

क्यों पढ़ना एं गड्ड किताबां दी,
सिर चाना एं पंड अज़ाबां दी,
हुण होइउ शकल जलादां दी,
अग्गे पैंडा मुश्कल मारा ए।

त्रण हाफ़िज़ हिफ़्ज़ क़ुरान करें
पढ़-पढ़ के साफ़ ज़बान करें,
फिर निअमत वल्ल ध्यान करें,
मन फिरदा ज्यों हलकारा ए।

बुल्लाह वी बोहड़ दा बोया सी,
ओह बिरछा वड्डा जां होया सी,
जद विरछ ओह फ़ानी होया सी,
फिर रह गया बीज अकाश ए।

इक अलफ़ पढ़ो छुटकारा ए।

एक अक्षर में मुक्ति

एक अलिफ़ (अल्ला) का नाम लो, इसी में मुक्ति है, निजात है। (अरबी-फ़ारसी वर्णमाला में अल्लाह लिखें तो पहला अक्षर अलिफ़ है।

जो आकार में एक (परमात्मा) के समान है।) उसी एक से दो-तीन-चार हुई यानी सृष्टि की उत्पत्ति हुई। उनसे फिर हजारों, लाखों और करोड़ों हुए, और फिर उन्हीं से अगणित होते गए। इस प्रकार यह एक का नुक़्ता कितना अद्वितीय है। क्यों पढ़ते हो गाड़ी-भर किताबें, आखिर क्यों पढ़ते हो और सिर पर (क्यों) उठाते हो गठड़ी दुःखों की।

(बहुत पढ़लेने के बाद) तुम्हारी शक्ल जल्लाद-सी हो गई है। (मौत के बाद तुम्हें दुर्गम घाटी में से गुज़रना होगा।

हाफ़िज़ बनकर क़ुरान शरीफ़ हिफ़्ज़ (कण्ठस्थ) कर ली और बार-बार पढ़कर ज़बान भी रवां कर ली। उसके आगे हुआ यह कि दुनिया की नेमतों की ओर ध्यान देने लगे और मन हरकारे की तरह चहुं ओर दौड़ने लगा।

अर्थात् किताबी ज्ञान के बाद भी चित्त स्थिर होकर प्रभु चरणों में नहीं लगा। बुल्लेशाह कहता है कि कभी वटवृक्ष-सा यह संसार बोया गया था और कालक्रम में यह वटवृक्ष बड़ा होता गया। जब यह वृक्ष नष्ट हो जाएगा, तो जो कुछ बाकी बचेगा वह बीजरूप में आकाररहित अल्ला होगा। संसाररूपी वृक्ष नष्ट होने पर बीजरूप में निराकार परमात्मा ही विद्यमान होता है। इसी प्रकार शरीर नष्ट होने पर आत्मा नष्ट नहीं होती। अतः एक अल्ला का नाम लो। इसी में मुक्ति (निजात) है।

इक टूणा

इक टूणा अचम्भा गावांगी,
मैं रुट्ठा यार मनावांगी। टेक।

इह टूणा मैं पढ़ पढ़ फूकां,
सूरज अगन जलावांगी।
अक्खीं काजल काले बादल,
भवां से आंधी लिआवांगी।
सत समुंदर दिल दे अन्दर,
दिल से लहर उठावांगी।

बिजली होकर चमक डरावां,
बादल हो गरजावांगी।
इश्क़ अंगोठी हरमल तारे,
चांद से कफ़न बनावांगी।
लामकान की पटड़ी ऊपर,
बैहकर नाद बजावांगी।
लाए सवां मैं शौह गल अपने,
तद मैं नार कहावांगी।

एक टोना

इस काफ़ी में प्रेमिका (आत्मा) कहती है कि मुझे भले ही कोई साधन अपनाना पड़े, मैं जैसे भी होगा, अपने प्रियतम (परमात्मा) को मनाकर रहूंगी। मैं विचित्र बोल गाऊंगी और इस तरह अपने रूठे प्रियतम को मनाऊंगी। इस मंत्र को पढ़-पढ़कर फूंकें मारूंगी, जिससे सूर्य के समान अग्नि पैदा होगी। मेरी आंखों का काजल काला बादल बन जाएगा और

भौंहों से तो मैं आंधी ही ले आऊंगी। सात समुद्रों को मैं हृदय में समेट-कर दिल ही से उनमें तूफान उठाऊंगी। बिजली बनकर मैं डरावनी चमक पैदा करूंगी, और बादल के समान गरजूंगी। इश्क की अंगीठी में हरमल (जड़ी-बूटी) फेंकूंगी और तारों का ईंधन जलाऊंगी। चांद की चांदनी से सफ़ेद कफ़नी बनाऊंगी। लामकान की पटड़ी पर बैठकर मैं नाद बजाऊंगी। अपने शौहर को अपने गले लगाकर सो जाऊंगी, तभी मैं उसकी प्रिया कहाने के योग्य हो सकूंगी।

इलमों बस करीं

इलमों बस करीं ओ यार
इक्को अलफ़ तेरे दरकार । टेक ।

इलम न आवे विच शुमार,
जांदी उमर, नहीं इतबार,
इक्को अलफ़ तेरे दरकार,
इलमों बस करीं ओ यार ।

पढ़-पढ़ लिख-लिख लावें ढेर,
ढेर किताबां चार चुफ़ेर,
गिरदे चानण, विच्च हनेर,
पुच्छो राह ते ख़बर न सार ।

पढ़-पढ़ निफ़ल नमाज़ गुज़ारें,
उचियां बांगां चांघां मारे,
मिम्बर ते चढ़ वाज़ पुकारें,
कीता तैनूं इलम ख़्वार ।

इलमों प्ये ने कज़िये होर,
अक्खां वाले अन्हें कोर,
फड़दे साध ते छड्डण चोर,
दोहीं जहानीं होण ख़्वार ।

पढ़-पढ़ शेख़-मशेख़ कहावें,
उलटे मसले घरों बणावें,

बेइलमां नूं लुट-लुट खावें,
सच्चे-झूठे करें करार।

पढ़-पढ़ मुल्लां होए काज़ी,
अल्ला इलमों बाझों राज़ी,
होवे हिरस दिनों दिन ताज़ी,
तैनूं कीता हिरस ख़वार।

पढ़-पढ़ मसले पिआं सुणावें,
ख़ाणा शक-शुबहे दा खावें,
दस्सें होर तो होर कमावें,
अन्दर खोट बाहर सुच्यार।

जद मैं सबक़ इश्क़ दा पढ़िआ,
दरिया बेख़ वहदत दा वड़िआ,
घुम्मण-घेरां दे विच अड़िआ,
शाह इनायत लाया पार।

पोथी-साधना बन्द करो

इस काफ़ी में धर्मग्रन्थों के अनन्त पठन-पाठनों की निस्सारता बताते हुए अन्तर्मुखी प्रेम का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि ये सारी पोथियां पढ़ना बन्द करो, मित्र! तुम्हें तो एक अलिफ़ अक्षर (अल्लाह) की ही जरूरत है। पुस्तकीय ज्ञान की तो कोई सीमा नहीं, आयु प्रतिदिन बीत रही है। कुछ भरोसा नहीं कब आयु समाप्त हो जाए। प्रभु को पाने हेतु तुम्हें तो सिर्फ़ एक अलिफ़ की ही ज़रूरत है। अतः यह सारी पोथी-साधना छोड़ दो।

तुम ढेरों पढ़-लिख गए, तुम्हारे चारों ओर पुस्तकों का ढेर ही ढेर है। इसलिए इर्द-गिर्द तो प्रकाश है, लेकिन भीतर अन्धकार भरा पड़ा

है। सच्ची राह पूछो तो उसका तुम्हें कुछ अता-पता नहीं मिलता। पुस्तकीय ज्ञान से प्रभावित हो तुम निफ़ल[1] करते हो, नमाज भी अदा करते हो, और ऊंची आवाज़ में बांगें भी देते हो, मिम्बर[2] पर चढ़कर वाज़[3] भी करते हो। मतलब है कि पुस्तकीय ज्ञान ने तुम्हें परेशान कर रखा है। पुस्तकीय ज्ञान से और भी विवाद पैदा होते हैं, आंखवालों को कोरमकोर अन्धा मान लिया जाता है। भले आदमी धर लिए जाते हैं और चोर छूट जाते हैं। और लोक-परलोक में लोग दुःख पाते हैं। यह सच है कि पढ़-पढ़कर आप शेख़[4] कहलाने लगे हो, लेकिन अपनी ओर से प्रतिकूल समस्यायें ही पैदा करते हो। अपने ज्ञान के बल पर अनपढ़ लोगों को लूट-लूटकर खाते हो और लोगों से झूठे-सच्चे वादे करते रहते हो।

पढ़-पढ़कर लोग मुल्ला और क़ाज़ी बन जाते हैं, किन्तु भगवान तो विद्याहीनों पर भी प्रसन्न हो जाता है, पढ़े-लिखों की हवस प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। सच पूछो तो तुम्हें भी तुम्हारी हवस परेशान कर रही है।

पढ़-पढ़ तुम विवादपूर्ण बातें सुना रहे हो। जो खाना तुम खा रहे हो वह सन्देह और संशय का खाना है, तुम्हारी कथनी कुछ है और करनी कुछ और। सच में तो तुम्हारे अन्दर खोट है लेकिन बाहर से तुम स्वच्छ प्रतीत होते हो।

जब मैंने इश्क़ के मार्ग को अपनाया तो अद्वैत की नदी नज़र आई और उसी में छलांग लगा दी। मैं मूर्ख भीषण भंवर में फंस गया। किंतु मेरे मुर्शिद शाह इनायत ने मुझे पार लगा दिया।

---

१. निफ़ल—वह इबादत जो फ़र्ज़ न हो।
२. मिम्बर—वाज़ कहने की ऊंची जगह।
३. वाज़—मज़हबी व्याख्यान।
४. जो मजहबी इल्म में पारंगत हो।

इश्क़ दी नवियों नवीं बहार

इश्क दी नवियों नवीं बहार । टेक ।

जां मैं सबक़ इश्क़ दा पढ़िआ,
मसजिद कोलों जियूड़ा डरिआ,
पुछ पुछ ठाकरद्वारे वेड़िआ ।
जित्थे वजदे नाद हज़ार ।

वेद क़ुरानां पढ़-पढ़ थक्के,
सिज़दे करदिआं घस गये मत्थे,
ना रव तीरथ ना रब मक्के,
जिस पाया तिस नूर अनवार ।

फूक मुसल्ला भन्न सुट लोटा,
ना फड़ तसबो आसा सोटा,
आशक़ कहंदे दे दे होका,
तरक हलालों खा मुरदार ।

हीर-रांझे दे हो गये मेले,
भुल्ली हीर ढूंडेंदी बेले,
रांझण यार बग़ल विच खेले,
सुरत न रह्या सुरत संभार ।

इश्क़ का आनन्द नित्य नया

जिसे प्रेम का रहस्य ज्ञात हो जाता है और प्रभु का प्रकाश अनुभव होने लगता है, उसके लिए इश्क़ का आनन्द नित्य नया होता है । बुल्लेशाह कहते हैं कि जब मैंने इश्क़ की दीक्षा ली तो मेरा अन्तर्मन

मस्जिद से डरने लगा। पूछते-पुछाते मैं ठाकुरद्वारे जा घुसा जहां हज़ारों नाद बज रहे थे। (आत्मज्ञान और प्रभु की कृपा हो जाने पर जाति-धर्म सब छूट जाते हैं)। लोग वेद और क़ुरान पढ़-पढ़कर थक रहे हैं, सिज़दा करते-करते माथे घिस गए हैं, लेकिन इससे क्या प्रभु मिलता है ? भगवान न तो तीर्थ-स्थानों पर है और न मक्के में। वह जिसे भी प्राप्त हुआ वह नूर-अनवार (प्रकाश रूप) हो जाता है। प्रभु को प्राप्त करना है तो मुसल्ले को फूंक दो, लोटे को तोड़ दो और तसबीह, आसा, सोटा हाथ में कुछ मत लो। आशिक़ पुकार-पुकारकर कह रहा है कि उसे पाने के लिए हलाल और हराम सब त्याग दे (अर्थात् हलाल और हराम में अन्तर करना छोड़ दे)। हीर और रांझे का मिलन हो गया, भ्रमित हीर यों ही (रांझे को) बेले में ढूंढती रही, उसका प्रिय रांझा तो उसकी बग़ल में ही खेल रहा था, उसे होश ही न था। अरी होश में आ तभी तो रांझे से मिलन संभव होगा।

उठ जाग

उठ जाग घुराड़े मार नहीं,
एह सौण तेरे दरकार नहीं । टेक।

कित्थे हैं सुलतान सिकन्दर,
मौत न छडिआ पीर पगंबर,
सबमें छड़-छड़ गए अडंबर,
कोई एथे पायेदार नहीं ।

जो कुझ करसैं सो कुझ पासैं,
नहीं तां ओड़क पच्छो तासैं,
सुंजी कूंज वांग़ कुरलासैं,
खभां बाझ उडार नहीं ।

बुल्लहा शौह बिना कोई नाहीं,
एथे ओथे दोहीं सराईं,
सम्भल-सम्भल क़दम टिकाईं,
फिर आवण दूजी वार नहीं ।

उठ जाग

बुल्लेशाह अचेत जीव को सावधान करते हुए जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझाते हुए कहते हैं कि उठ जाग, खर्राटे मारकर सोता ही न रह । इस प्रकार सो जाने की तुझे ज़रूरत नहीं बल्कि आलस्य छोड़कर प्रभु की ओर ध्यान दो। ओ ज़रा सोचो कि विश्वविजयी सुल्तान सिकंदर आज कहां है । सदा याद रख कि मृत्यु ने किसी भी पीर-पैग़म्बर तक को नहीं छोड़ा, तब तेरी क्या बिसात । सभी लोग इस आडम्बर (रंगा-

रंग संसार) को छोड़कर चले गए। जाहिर है कि यहां कोई भी स्थिर नहीं है। इस संसार में तो तुम जो कुछ करोगे उसी का प्रतिफल पाओगे, अच्छे का अच्छा, बुरे का बुरा। यदि प्रभु से प्रेम नहीं किया तो अन्त में पछताना पड़ेगा। तुम्हारा हस्र यह होगा कि पंखों के बिना उड़ने में असमर्थ होगे और सूनी, अकेली कूंज की तरह क्रन्दन करोगे।

बुल्ला कहता है कि शौह (पति-परमेश्वर) के बिना और कोई नहीं, इसलिए यहां और वहां दोनों लोकों में, संभल-संभलकर क़दम रखो। यहां लौटकर दूसरी बार न आ सकोगे।

उठ चल्ले गुआंढों यार

उठ चल्ले गुआंढों यार,
रब्बा हुण की करिये। टेक।

उठ चल्ले हुण रहंदे नाहीं
होया साथ तियार,
रब्बा हुण की करिए ?

चारों तरफ़ चल्लण दे चरचे,
हर सू पई पुकार,
रब्बा हुण की करिए।

ढांड कलेजे बल-बल उठ दी,
बिन देखे दीदार,
रब्बा हुण की करिये ?

बुल्हा शहु पिआरे बाझों,
रहे उरार ना पार,
रब्बा हुण की करिये ?

चल दिए यार पड़ोस से

अपने प्रिय (मुरशद) के कहीं दूर चले जाने पर बुल्लेशाह की विरह-वेदना का वर्णन इस काफ़ी में किया गया है। वे कहते हैं कि मेरे प्रिय तो मेरे समीप से उठकर चले गये। या अल्ला, अब मैं क्या करूं ? मेरे प्रिय जब उठकर चल दिए तो अब रुकते नहीं। उनके साथ चलने के लिए और भी कई तैयार हैं। या अल्ला, अब मैं क्या करूं ? चारों ओर उनके चलने की बातों के चर्चे हो रहे हैं, सभी ओर यही पुकार है कि वे चले गये। या अल्ला, अब मैं क्या करूं ? मेरे कलेजे में तो उनके दर्शन के बिना आग की लपटें जल रही हैं। या अल्ला, अब मैं क्या करूं ? अब हालत यह है कि प्रिय पति के बिना बुल्लाशाह न तो दरिया के इस ओर है, न उस ओर। या अल्ला, अब मैं क्या करूं ?

उलटे होर ज़माने आए

उलटे होर ज़माने आये—
तां मैं भेद सजण दे पाये। टेक।

कां लगड़ां नूं मारन लग्गे।
चिड़ियां जुर्रे ढाए।
घोड़े चुगण अरूड़ियां उत्ते।
गद्दों ख़वेद पवाए।

आपणिआं विच उलफ़त नाहीं।
क्या चाचे क्या ताए।
पिओ पुत्तरां इतफ़ाक न काई।
धीआं नाल न माए।

सचिआं नूं पए धक्के मिलदे।
झूठे कोल बहाए।
अगले हो कंगाले बैठे,
पिछलिआं फ़रश बिछाए।

भूरियां वाले राजे कीते।
राजिआं भीख मंगाए।
बुल्लिहआ हुकम हजूरों आया।
तिस नूं कौण हटाए।

कैसा उल्टा ज़माना आ गया

ज़माने में न जाने कैसे सदाचारिक तथा नैतिक परिवर्तन आ गये हैं कि कुछ और ही तरह का वक़्त आ गया है। उस बदलाव से शायद

प्रभु की इच्छा जुड़ी हुई है। इसी से मैंने प्रिय प्रभु का भेद जाना।

ज़माने की उल्टी चाल का हाल यह है कि कौए बाज़ों को मारने लगे हैं। चिड़ियों ने बाज़ को चित कर दिया है। घोड़े गन्दगी के ढेर पर चुग रहे हैं और गधों को हरे खेत में छोड़ दिया गया है।

लोगों में आपसी प्रेम-सद्भाव इतना खत्म हो गया है कि अपनों में प्रेम नहीं रहा। चाचे-ताऊ तक प्यार से खाली हैं। पिता-पुत्रों के बीच एकता नहीं रही और मां का भी बेटियों के साथ प्यार नहीं रह गया है।

जो सच्चे हैं, उन्हें धक्के दिए जा रहे हैं और झूठों को पास बैठाया जा रहा है। जो अगली कतार में थे अर्थात् खुशहाल थे, वे कंगाल हो गये हैं, जो पिछली कतार में थे, वे कालीन बिछाकर शानो-शौकत से बैठे हैं।

भूरे ओढ़ हुए ग़रीब लोग राजे बन बैठे हैं,[1] और राजे भीख मांगने पर मजबूर हैं। बुल्ला कहता है कि इस सबका हुकम (आदेश) स्वयं खुदा ने जारी किया है, तब इसे कौन टाल सकता है !

---

१. यह संकेत तत्कालीन सिख योद्धाओं के प्रति प्रतीत होता है।

कदी मोड़ मुहारां ढोलिआ

कदी मोड़ मुहारां ढोलिआ,
तेरीआं वाटां तों सिर धोलिआ ।। टेक ।

मैं न्हाती-धोती रह गई,
कोई गंढ सजन गल बह गई,
कोई सुख़न अवल्ला बोलिआ,
कदी मोड़ मुहारां ढोलिआ ।

बुल्ल्हा शौह कदी घर आवसी,
मेरी बलदी भी बुझावसी,
जीहदे दुःखां ने मुंह खोलिआ,
कदी मोड़ मुहारां ढोलिआ ।

मेरे प्यारे कभी तो लौटो

विरहिणी आत्मा अपने प्रिय से लौट आने का अनुरोध करती है कि हे मेरे प्यारे, कभी तो लौट आओ। मेरे प्राण तो तेरी राहों पर न्यौछावर हैं।

मैं नहा-धोकर तैयार तो हुई, किन्तु साथ न जा सकी। पता नहीं प्रिय के मन में कौन-सी गांठ, कोई आशंका बैठ गई ? पता नहीं, अनजाने में मेरे मुंह से कोई ग़लत बात निकल गई। मैं बेकरार हूं, अतः मेरे प्यारे कभी तो लौट आओ।

बुल्ले को भरोसा है कि कभी-न-कभी तो शौहर (पति) घर लौटकर आयेगा और मेरे मन की जलती आग को बुझा देगा। लेकिन इस समय तो स्थिति यह है कि उसका विरह-दुःख मुंह बाये खड़ा है। इसलिए हे मेरे प्यारे, कभी तो लौट आओ।

की कर गिआ माही

देखो नी की कर गिआ माही,
लैंदा ही दिल हो गिआ राही । टेक ।

अम्बड़ झिड़के मैनूं बाबल मारे,
ताह्ने देंदे वीर पिआरे,
उस्से दी गल ओहा नितारे,
हसदिआं गल विच पै गई फाही ।

बूहे ते उन नाद बजाया,
अक़्ल फ़िकर सभ चा वंजाया,
जे बुरी बुरिआर मैं होईआं,
मैनूं देवो उत वल लाही ।

बुल्हा शौह दे इश्क़ रंजाणी,
डंगीआं मैं किसे नाग अयाणी,
अज्ज अजो की प्रीत न जाणी,
लग्गी रोज़ अज़ल दी आही ।।

क्या कर गया प्यारा

आत्मा के आकर्षण और प्रियतम से न मिल पाने की तड़प का वर्णन करते हुए इस काफ़ी में प्रेमोदय और उसकी मीठी कसक का मार्मिक चित्रण करते हुए बुल्लेशाह कहते हैं कि ऐ सखी, देखो तो वह प्यारा क्या कर गया ? मेरा दिल लेते ही बस चल दिया ।

अब स्थिति यह है कि मुझ प्रेम दीवानी को मां झिड़कती है, मुझे बाप मारता है और प्यारे भाई भी ताने कसते हैं । उसकी बात का निर्णय वही करे, लेकिन उसको देख जो ज़रा हंसी कि हंसते मेरे गले में फांस पड़ गई ।

हुआ यह कि उसने मेरे दरवाजे पर आकर नाद बजाया। उसे सुनते ही मेरे तो होशो-हवास जाते रहे और मैं बुरी तरह पगला गई हूं। अब तो बस मुझे उसी की ओर धकेल दो।

बुल्ला शौहर के इश्क़ में फंसा ग़मगीन है। मैं अज्ञानी हूं, मुझे उसके प्रेम नाग ने डस लिया है, लेकिन एक बात बता दूं कि उसकी और मेरी प्रीति आज, बिल्कुल आज की नहीं है बल्कि यह प्रीति तो रोज़े अज़ल (सृष्टि-रचना के दिन) से चली आ रही।

की जाणां

की जाणां मैं कोई रे बाबा,
की जाणां मैं कोई। टेक।

जो कोई अन्दर बोले चाले,
ज़ात असाडी सोई।

जिसदे नाल मैं नेहुं लगाया,
ओहो जिहा मैं होई।

मिहर करीं ते फ़ज़ल करीं तू,
मैं आजज़ दी ढोई।

नचण लगी तां घुंघट केहा,
जद मुंह थीं लत्थी लोई।

भला होया असीं दूरों छुट्टे,
नेड़िओं लाल लधोई।

बुल्हे शौह इनाइत करके—
शौक शराब दित्तोई।

मैं क्या जानूं

आत्मा की अपनी कोई जाति नहीं होती और सामान्य व्यक्ति अपने को पहचान भी कहां पाता है। इसीलिए जिज्ञासु संत कहता है कि अरे बाबा, मुझे क्या पता कि मैं कौन हूं। मैं कौन हूं, यह मैं भला कैसे जान सकता हूं। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि मेरे भीतर बैठा जो मुझसे बातचीत करता है, वही मेरी जात है। उसी के साथ मेरा नेह जुड़ा है

और मैं बस उस जैसी ही हो गई हूं । अब प्रम-बंधन के कारण मैं विवश हूं और मेरा कोई सहारा नहीं है, इसलिए आप मुझ पर कृपा करो, दया करो। जब नाचने लगी तो घूंघट कहां टिकता है । अब तो चेहरे से परदा उतर गया है । (आत्मा-परमात्मा के बीच की बाधा गई) यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ जो मेरा प्रिय मुझे समीप ही मिल गया, मुझे दूर जाने के झंझट में नहीं पड़ना पड़ा । बुल्ले पर शौह (पति) ने कृपा की और उसे प्रेम-मदिरा पिला दी। (उस मदिरा से आई बेखुदी में प्रभु से मिलना संभव हुआ ।)

की बेदरदां के संग यारी

की बेदर्दां के संग यारी ?
रोवण अखियां ज़ारो-ज़ारी । टेक ।

सानूं गये बेदर्दी छड़ के,
सीने सांग हिज़र दी गड़ के,
जिस्मों जिंद नूं लै गये कढ़ के,
एह गल कर गये हैं सियारी ।

बेदर्दां दा की भरवासा,
ख़ौफ़ नहीं दिल अंदर मासा,
चिड़िया मरन गंवारा हासा,
मगरों हस-हस ताड़ी मारी ।

आवण कह गये फेर न आये,
आवण दे सब क़ौल भुलाये,
मैं भुल्ली भुल नैण लगाये,
कहे मिले सानूं ठग ब्योपारी ।

कैसे बेदर्दी से प्रीत लगी

इस काफ़ी में प्रियतम को बेदर्दी ठहराते हुए कहा गया है कि वह प्रीति लगाकर प्रेमिका को विरह की अग्नि में जलने के लिए छोड़ गया है । वह बेचारी दुखिया बनकर कहती है कि कैसे बेदर्दी से प्रीति लगी है जो आंखों से आंसू थमते ही नहीं ।

प्रीति लगाकर वह कठोर होकर हमें छोड़कर चले गये हैं और कलेजे में गाड़ गये विरह का भाला । देह में से प्राण निकालकर ले गये हैं । हाय वे यह कैसी हृदयहीनता कर गये हैं !

भला ऐसे निर्मम लोगों का क्या भरोसा ? उनके हृदय में (ईश्वर का) रत्ती-भर भय नहीं। चिड़ियां मर जाएं तो गंवार हंसते हैं। और हंसने के बाद, उपहास-भरी तालियां बजाते हैं। (भला यह भी कोई बात हुई कि किसी की बेबसी पर हंसें !)

वे कह तो यह गये थे कि हम अवश्य लौट आएंगे, किन्तु अभी तक लौटे नहीं। यही नहीं, उन्होंने तो लौट आने के सभी वचन भुला दिये। असल में चूक मुझसे ही हुई जो भूल में उनसे नयन लगा बैठी। कैसे ठग व्यापारी मिले थे मुझे !

कुत्ते

रातीं जागें करें इबादत
रातों जागण कुत्ते,
तैकूं उत्ते।

भौंकणों बन्द मूल ना हुंदे
जा रूड़ी ते सुत्ते,
तैकूं उत्ते।

ख़सम अपणे दा दर न छड्डदे
भावें वज्जण जुत्ते,
तैकूं उत्ते।

बुल्ल्हे शाह कोई वस्त विहाज लैं
नहीं ते बाज़ी लै गये कुत्ते,
तैकूं उत्ते।

कुत्ते

इस भावपूर्ण काफ़ी में बुल्लेशाह निष्ठा की चर्चा करते हुए कुत्ते की स्वामिभक्ति की चर्चा करके उसे साधक की निष्ठा से जोड़ देते हैं। वे कहते हैं कि रात-भर जागते हो, इबादत करते हो। रात-भर तो कुत्ते भी जागते हैं। तब तो कुत्ते तुमसे कहीं बढ़कर हैं।

कुत्ते कूड़े के ढेर पर पड़े हुए निरन्तर भौंकते रहते हैं। इस लिहाज़ से तो कुत्ते तुमसे कहीं बढ़कर हैं।

भले ही कोई उन्हें कितना मारे या ठुकराये, वे अपने मालिक का द्वार नहीं छोड़ते। इस दृष्टि से भी कुत्ते तुमसे कहीं बढ़कर हैं।

बुल्लेशाह कहते हैं कि साधना के मार्ग पर चलकर निष्ठापूर्वक कोई कमाई कर लो वरना कुत्ते बाज़ी ले जाएंगे। अरे, तुमसे तो कहीं बढ़कर हैं कुत्ते।

क्या करिए

अब लगन लगी किह् करिये,
नांह् जी सकिये नांह् ते मरिये । टेक ।

तुम सुनो हमारे बैना,
मोहि रात दिने नहीं चैना,
हुण पी बिन पलक न सरिये ।

इह् अगन बिरोंह् दी जारी,
कोई हमरी तपत निवारी,
बिन दरसन कैसे तरिये ?

बुल्हा पई मुसीबत भारी,
कोई करो हमारी कारो,
एह् अज्जर कैसे जरिये ?

क्या करें

प्रिय मिलन का आनन्द उठा लेने पर वियोग की तपिश असहनीय होती है और उसकी जान सांसत में पड़ जाती है। कुछ सूझता नहीं तो विरहिणी कह उठती है कि अब लगन लगी है, क्या करें। न तो हम जी सकते हैं और न मर सकते हैं। यह दुखदाई प्रीत त्यागी भी तो नहीं जा सकती।

अच्छा, अब तुम मेरी सीधी-सादी बात सुनो। रात हो या दिन, मुझे चैन नहीं है और अब प्रिय के बिना पल-भर भी गुज़र नहीं हो पा रही है।

विरहाग्नि मुझे निरन्तर जला रही है। मेरे इस ताप को दूर करने का कोई तो इलाज करो। सच तो यह है कि उसके दर्शन बिना विरह की आग कैसे भी शान्त नहीं होने वाली।

बुल्लेशाह पर भारी संकट आन पड़ा है, तुम हमारा इलाज करो। अब तुम्हीं बताओ कि इस असह्य कष्ट को कैसे सहन करें।

क्यों ओह्ले बैह् बैह् झाकीदा

क्यों ओह्ले बैह् बैह् झाकीदा ?
एह् पर्दा किस तों राखी दा ? । टेक ।

तुसीं आप ही आये सारे हो,
क्यों कहिये तुसीं निआरे हो,
आए अपने आप नज़ारे हो,
विच बरज़ख़ रख्या ख़ाकी दा ।

जिस तन विच इश्क़ दा सोज़ होइआ,
ओह बेख़ुद ते बेहोश होइआ,
ओह क्यों कर रहे ख़मोश होइआ,
जिस प्याला पीता साक़ी दा ।

तुसीं आप असां वल धाए हो,
कद रहंदे छपे छपाए हो,
तुसीं शाह इनायत बन आए हो,
हुण ला ला नैन झमाकी दा ।

बुल्ल्हा शाह तन दी भाठी कर,
अग बाल हड्डां तन माटी कर,
एह शौक मुहब्बत बाक़ी कर,
एह मधवा इस बिध छाक़ी दा ।

ओट में बैठे ताक-झांक

नवयुवती की भांति माया का आवरण डाले प्रभु सब रचना देख रहा है, इसी बात को बुल्लेशाह ने इस काफ़ी में बयान करते हुए कहा है कि

क्यों ओट में बैठकर ताक-झांक करते हो ? अरे यह पर्दा तुम किससे रखते हो ।

हर स्थान पर तुम स्वयं उपस्थित हो, तब भला मैं यह कैसे कहूं कि तुम संसार से अलग हो । तुम स्वयं ही अपना दर्शन करने आए हो, अब बीच में खाकी शरीर की आड़ कैसी ?

जिस शरीर में इश्क़ का सरूर फैला हो, वह अपने-आप को भूल जाता है, बेहोश हो जाता है । वह भला चुप होकर कैसे बैठ सकता है जिसने साक़ी (मुर्शिद) से प्रेम का प्याला लेकर पिया हो !

तुम स्वयं हमारी ओर दौड़कर आए हो, अब भला तुम कैसे छुपे हुए रह सकते हो ? तुमने मुर्शिद शाह इनायत का रूप ले लिया है, अब नयन मिलाकर बार-बार आंखें झपकते हो, कभी आंखें मूंदते हो तो कभी खोलते हो, आखिर यह क्या खेल है ।

बुल्लेशाह अपने तन को भट्ठी बना, उस इश्क़ की आग में तन को तपा, तन को मिट्टी (राख) की तरह मिटा दे, केवल अपने प्रेम के मूल भाव को शेष रहने दे, प्रेम-मधु चखने का यही ढंग है ।

ख़ाकी

ख़ाकी ख़ाक स्यों रल जाणा,
कुछ नहीं ज़ोर धिंगाणा। टेक।

ग्ये सो ग्ये फेर नहीं आये
मेरी जानी, मीत, प्यारे,
मैं बाझों ओह रहंदे नाहीं,
हुण क्यों असां बिसारे,
विच क़बरां दे ख़बर न काई,
मारू केहा झुलाणा।

चित्त पिआ न जाए असाधों,
उठ्भे साह न रहंदे,
असीं मोइआं के परले पार होए,
जीवंदिआं विच बहंदे,
अज कि मलक तगादा सानूं,
होसी वज कहाणा।

ओथे मगर पिआदे लग्गे,
तां असीं एथे आए,
एथे सानूं रहंण न मिलदा,
अज्जे कित बल धाए,
जो कुछ अगलिआं दे सिर बीती,
असां भी ओह टिकाणा।

बुल्हा एथे रहण न मिलदा,
रोंदे पिटदे चल्ले,

इक नाम धन्नी खरची है,
होर बिहा नहीं कुझ पल्ले,
मैं सुफ़ना सभ जग भी सुफ़ना,
सुफ़ना लोग बिबाना।

मिट्टी के पुतले

मिट्टी के पुतले, हे मनुष्य, तू अन्ततः खाक में मिल जाएगा। आज तुझे अपने में जो शक्ति दिखती है, वह किसी काम नहीं आएगी।

दुनिया का तो यह चलन है कि जो चले गये वे लौटकर नहीं आए। वे मेरे प्राणप्रिय, मेरे मित्र और मेरे प्यारे थे जो मेरे बिना रहते नहीं थे। अब उन्होंने हमें क्यों बिसार दिया? वे तो अब क़ब्रों में दफ़न हैं और उनका कोई समाचार हम तक नहीं पहुंचता। मृत्युमुख का यह कैसा बवडर फैला हुआ है!

हमारी हालत यह है कि हम न तो चित लेट सकते हैं और न पट; ऊर्ध्वमुख श्वास तक नहीं निकलते, हम तो मरे हुओं के भी पार जा चुके हैं और जीवितों के बीच रहने का भ्रम पाले हुए हैं। आज या कल मृत्यु अवश्य ही तकाज़ा करने आएगी और उस समय बहुत बड़ा क़हर होगा।

वहां (मृत्यु के) प्यादे हमारा पीछा कर रहे थे, तभी हम यहां चले आए। अब यहां भी हमें रहने नहीं दिया जाता। अब यहां से आगे कहां जायेंगे? जो कुछ हमारे पूर्वजों के सिर पर बीती, हम पर भी वही बीतेगी, हमारा भी वही ठिकाना होगा जो उनका है।

बुल्लेशाह कहते हैं कि यहां हमें रहने नहीं दिया जा रहा, हम रोते-पीटते जा रहे हैं। महाधनी प्रभु का नाम ही हमारा धन है जिसे हम खर्च कर सकते हैं और दूसरा कुछ भी हमारे पल्ले नहीं है। मैं स्वप्न हूं, सारा संसार स्वप्न है, शेष सभी लोग स्वप्न हैं। अर्थात् सब कुछ स्वप्न ही तो है।

गल रौले लोकां पाई ए

गल रौले लोकां पाई ए। टेक।

सच आख मना क्यों डरना एं,
इस सच पिच्छे तूं तरना एं,
सच सदा अबादी करना एं,
सच वस्त अचम्भा आई एं।

शाह रग थीं ओह वसदा नेड़े,
लोकों पा ल्ये लम्मे झेड़े,
यां के झगड़े कौन नबेड़े,
भज भज के उमर गवाई ए।

शोर में उलझा दी बात

साधक का व्यवहार सामान्य जन से भिन्न होता है, अतः लोगों में तरह-तरह की चीमागोइयां होती रहती हैं, जिससे बात कुछ-की-कुछ हो जाती है। यही तथ्य इस काफ़ी में वर्णित है कि लोगों ने शोर मचा-मचा कर बात उलझा दी है।

ऐ मेरे मन, सच कह, भला इस सबसे तू डरता क्यों है ? तेरा उद्धार तो सच के द्वारा ही होगा। सच में इतनी शक्ति है कि वह सदा आबाद करता है। सत्य का मार्ग अपनाने से विचित्र वस्तु प्राप्त हुई है।

प्रभु शाहरग तभी समीप रहता है। उसे प्राप्त करने के लिए लोगों ने लम्बे-चौड़े विवाद खड़े कर रखे हैं। उन झगड़ों का निपटारा भला कौन करे ? वे तो व्यर्थ ही भटक-भटककर उम्र गंवा रहे हैं।

चुप करके करीं गुज़ारा

चुप करके करीं गुज़ारे नूं। टेक।

सच सुण के लोक न सैंह्दे ने,
सच आखिये तां गल पैंदे ने,
फिर सच्चे पास न बैंह्दे ने,
सच्च मिट्ठा आशक़ प्यारे नूं।

सच शरा करे बर्बादी ए,
सच आशक़ दे घर शादी ए,
सच करदा नवीं अबादी ए,
जेहा शरा तरीक़तहारे नूं।

चुप आशिक़ तों ना हुंदी ए,
जिस आई सच सुगन्धी ए,
जिस माह्ल सुहाग दी गुन्दी ए,
छड दुनिया कूड़ पसारे नूं।

चुप रहकर गुज़र-बसर करो

सत्य का कहना और सच सुनकर सह लेना दोनों ही कठिन हैं। इसलिए साधक को बुल्लेशाह की सलाह है कि चुप रहकर गुज़र-बसर करो।

सच सुनकर लोग उसे सहन नहीं करते। सच कड़वा होता है, अतः आमतौर पर सच कहें तो लोग झगड़ने लगते हैं और सच कहने वाले के निकट बैठते तक नहीं। लेकिन साधक और प्रभु-प्रेमी को सच बहुत मीठा लगता है।

सच दुनियादारी को बर्बाद कर देता है, किन्तु सच आशिक़ को प्रसन्न करता है। सच से व्यक्ति के भावना जगत् में बहुत कुछ नया फूट उठता है। तरीक़त के मुक़ाम पर पहुंचे हुए सूफ़ी के लिए सच ही शाह है।

आशिक़ चुप नहीं रह सकता। उसके पास सच सुगन्ध की तरह पहुंचता है। उसने सुहाग (प्रभु-मिलन) के लिए हार गूंथ रखे हैं। सच की खातिर वह दुनिया को त्याग देता है जो कि सर्वत्र फैला हुआ झूठ है।

घड़िआली दिओ निकाल

घड़िआली दिओ निकाल नी,
अज पी घर आइआ लाल नी । टेक ।

घड़ी घड़ी घड़िआल बजावे,
रैंण वसल दी पिआ घटावे,
मेरे मन दी बात जे पावे—
हत्थों चा सुट्टे घड़िआल नी ।

अनहद बाजा बजे सुहाणा,
मुतरिब सुघड़ां तान तराना,
भुल्ला सौम, सलात, दुगाना,
मध पिआले देण कलाल नी ।

मुख वेखण दा अजब नज़ारा,
दुःख दलिद्दर दा उठ गिआ सारा,
रैंण बधे कुछ करो पसारा,
दिन अग्गे धरो दीवाल नी ।

टूणे टामण किये बथेरे,
सिहरे आए वड-वडेरे,
तो जानी घर आइआ मेरे,
लख वर्हे रहां ओह् दे नाल नी ।

बुल्लिहआ शौह दी सेज पिआरी,
नी मैं तारनहारे तारी,
किंवे किंवे मेरी आई वारी,
हुण विछड़ण होइआ मुहाल नी।

घड़ियाल बजाने वाले को निकाल दो

इस काफ़ी में साधक के सतगुरु से मिलने के आनन्द का वर्णन है। मिलन के क्षण बड़ी जल्दी बीतते हैं और घंटा बजाने वाला जब घण्टा बजाकर समय की सूचना देता है तो प्रिया को लगता है कि मिलन के क्षण घटते ही जा रहे हैं। इसलिए वह कहती है कि घंटा बजाने वाले इस घड़ियाली को निकाल दो। आज मेरा पिया, मेरा लाल, मेरे घर आया हुआ है। हर घण्टे की ध्वनि करता हुआ यह घड़ियाली बार-बार घड़ियाल बजाता है। इस प्रकार वह मिलन रात्रि का समय घटा रहा है। वह मेरे मन की बात समझ ले यही अच्छा है वरना उसके हाथ से घड़ियाल फेंक दो।

मिलन के इस क्षण में सुहावना अनहद बाजा बज रहा है। गायक, तान और तराना सभी सुन्दर हैं। ऐसी अवस्था में रोजे, दरूद, नमाज़, शुक्रान आदि सब कुछ भूल गया है। स्वयं कलाल (मुर्शिद) मुझे प्रेम-मद के प्याले भर-भर कर दे रहा है।

उस मिलन आनन्द का क्या कहना ? उसका मुख देखने का अद्भुत दृश्य था। दुःख, दरिद्रता आदि सभी जाते रहे। कुछ ऐसा यत्न करो कि मिलन रात्रि और लम्बी हो जाए जिससे मिलने का समय बढ़ जाए। अरे, कुछ नहीं तो आने वाले दिन के आगे दीवार रख दो ताकि सूर्योदय न हो और मिलन का अधिकतम सुख प्राप्त हो सके।

उस प्रिय से मिलने के लिए मैंने बहुत-से टोने किये। बड़े-से-बड़े जादूगर बुलाये। अब जाकर मेरा प्राण-प्रिय मेरे घर आया है। इसलिए जी चाहता है कि लाखों वर्ष इसके साथ रहूं।

बुल्ला कहता है कि प्रिय पति की सेज बड़ी प्यारी है। मेरा उद्धार तो स्वयं उद्धारक ने किया है। कैसे-कैसे यत्न करने के बाद अब जाकर मेरी बारी आई है। बस, अब तो बिछुड़ना मुश्किल हो गया है।

चूढ़ी हां

मैं चूढ़ेटरी आं सच्चे साहिब दी सरकारों। टेक।

धिआन दी छज्जली गिआन दा झाड़ू,
काम क्रोध नित झाड़ों,
काज़ी जाणे हाकम जाणें,
फ़ारख़तो बेगारों,
दिने रातीं मैं एहो मंगदी,
दूर न कर दरबारों,
तुध बाझों मेरा होर न कोई,
कें वल्ल करी पुकारों,
बुल्ल्हा शौह अनाइत बाझों,
बखरा मिले दीदारों।

भंगिन हूं सरकार की

बुल्लेशाह नम्रतावश स्वयं को प्रभु के दरबार की मेहतरानी बताते हुए कहते हैं कि मैं सच्चे सरकार की भंगिन हूं।

इस रूपक को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि मेरे पास है ध्यान का छाज और ज्ञान का झाड़ू जिससे मैं सदा काम और क्रोध को झाड़ती रहती हूं।

काज़ी भी यह जानता है और हाकिम भी जानता है कि मैं सांसारिक बेगार से पूरी तरह आज़ाद हूं।

अब जब मैं पूरी तरह उनकी ही हूं तो दिन-रात यही मांगती हूं कि मुझे अपने दरबार से कभी अलग मत करना।

साधक की प्रभु पर निर्भरता का बयान करते हुए सन्त कहता है कि तुम्हारे बिना मेरा कोई नहीं है। अब अगर चाहूं भी तो फ़रियाद किसके पास करूं ?

शौहर (मुर्शिद) इनायत शाह के अतिरिक्त दर्शन का सौभाग्य किससे मिल सकता है ?

जिस तन लगिआ इश्क़ कमाल

जिस तन लगिआ इश्क़ कमाल,
नाचे बेसुर ते बेताल । टेक ।

दरदमंद नूं कोई न छेड़े,
जिसने आपे दु:ख सहेड़े,
जम्मणा जीणा मूल उखेड़े,
बूझे अपणा आप ख़िआल ।

जिसने वेस इश्क दा कीता,
धुर दरबारों फ़तवा लीता,
जदों हज़ूरों प्याला पीता,
कुछ ना रह्या सवाल जवाब ।

जिसदे अन्दर वस्स्या यार,
उठिया यार ओ यार पुकार,
ना ओह चाहे राग न तार,
ऐंवे बैठा खेडे हाल ।

बुल्लिआ शौह नगर सच पाया,
झूठा रौला सब्ब मुकाया,
सच्चियां कारण सच्च सुणाया,
पाया उसदा पाक जमाल ।

जिसे पूर्ण प्रेम हो जाता है

जिसे प्रभु से पूर्ण प्रेम हो जाता है, वह आनन्दमय मस्ती में आकर बेसुर और बेताल नाचने लगता है ।

उस वेदना-भरे जीव को कोई क्या तंग करेगा, जिसने स्वयं अपने लिए दु:ख संजो लिए हैं। दुखों को वरण करने वाला जन्म और मरण को उखाड़ फेंकता है, और वह अपनी हस्ती को स्वयं पहचान लेता है।

जिसने प्रभु प्रेम को जीवनाधार बना लिया है उसे स्वयं आदिसत्ता से आदेश प्राप्त होने लगते हैं। जब स्वयं आदिसत्ता के हाथ से प्रेम का प्याला पिया हो तो उस अवस्था में किसी प्रकार की दुविधा के लिए स्थान ही नहीं रहता।

जिसके हृदय के अन्दर उसका यार (प्रभु) बस जाता है, तो वह आपा भूलकर यार ही यार पुकार उठता है। जब रोम-रोम में प्रिय की ध्वनि गूंजने लगे तब फिर किसी बाहरी राग अथवा ताल की चाह ही नहीं रह जाती और वह अनायास मिलनसुख में डूबकर नाचने लगता है।

बुल्लेशाह कहता है कि प्रिय के नगर में ही सच प्राप्त होता है। प्रियतम के नगर को देखने के बाद तो संसार के सारे झूठे शोर समाप्त हो जाते हैं। यह परम सत्य मैंने उन लोगों के लिए कहा है जो सच्चे हैं; और जिन्हें उसके परम प्रेममय पवित्र रूप सौन्दर्य का दर्शन हो चुका है।

आ मिल यारा सार लै मेरी

आ मिल यारा सार लै मेरी,
मेरी जांन दुखां ने घेरी। टेक।

अन्दर ख़्वाब विछोड़ा होया,
ख़बर न पैंदी तेरी,
सुञ्जी बन विच लुट्टी साइयां,
चोर-शंग ने घेरी।

मुल्लां काज़ी राह् बतावण,
दीन धरम दे फेरे,
एह् तां ठग ने जग दे झांवर
लावण जाल चुफेरे।

करम शरां दे धरम बतावण,
संगल पावण पैरी,
ज़ात मज़ब एह् इश्क़ न पुछदा,
इश्क शरा दा वैरी।

नदियों पार ए मुलक सजण दा,
लोभ लहर ने घेरी,
सतिगुर बेड़ी फड़ी खलोते
तैं क्यों लाई ए देरी।

बुल्हे शाह् शौह् तैनूं मिलसी,
दिल नूं देह् दलेरी,
प्रीतम पास ते टोलणा किस नूं,
भुलिओं सिखर दुपहरी।

आ जाओ मित्र, मेरी ख़बर लो

इस काफ़ी में कर्मकांडी पुरोहितों और मुल्लाओं पर व्यंग्य कसा गया है। सन्त कवि कहते हैं कि आओ मित्र, हमें मिलो, हमारा दुःख-सुख समझो। साधना की दिशा में बढ़ने वाले की जान दुःखों से घिरी हुई है।

स्वप्न में हम एक-दूसरे से बिछुड़ गए (आखिर यह जगत् सपना-सा ही तो है)। अब पता नहीं चलता कि तुम कहां हो। मेरे स्वामी, मैं वन में अकेली हूं, और लुट रही हूं। तरह-तरह के चोरों-डाकुओं ने मुझे घेर रखा है।

मुल्ला और क़ाज़ी तरह-तरह की कर्मकांडी राह दिखाते हैं जिससे दीन (इस्लाम) और धर्म (हिन्दू) सम्बन्धी भ्रम पैदा होते हैं। ये तो चिड़ीमारों की तरह पूरे ठग हैं और संसार में जीवों को फंसाने के लिए जाल बिछाते हैं।

ये लोग बाहरी कर्मकांड और शरीअत को धर्म (आन्तरिक अध्यात्म) बताते हैं, और इस प्रकार से पांवों में जंजीरें डाल देते हैं। ख़ुदा के इश्क़ के दरबार में कोई धर्म (सम्प्रदाय) के विषय में प्रश्न नहीं पूछता। सच कहूं तो सच्चे इश्क़ का शरीअत से बैर है।

प्रिय का देश नदी (भवजल) के पार है। नदी में लोभ की तरह-तरह की लहरें उठ रही हैं। सतिगुर (मुर्शिद) नाव लेकर खड़े हैं। उसी के सहारे पार हो सकते हो। तुम नाव में सवार होने में देर क्यों कर रहे हो?

बुल्लेशाह कहते हैं कि (नाव में चढ़ जाओ तो) तुम्हें प्रिय (अवश्य) मिलेंगे। दिल में भरोसा रखो। प्रिय तो तुम्हारे पास ही है, तुम किसे [illegible] रहे हो? भरी दोपहर के समय उसे ढूंढने की भूल क्यों कर रहे हो?

तांघ माही दी जलीं आं

तांघ माही दी जली आं
नित क़ाग उडावां खली आं। टेक।

अद्धी रात लटकदे तारे,
इक लटके, इक लटकण हारे,
मैं उठ आई, नदी किनारे,
पार लंघण नूं खली आं।

नैं चंदन दे शोर किनारे,
घुम्मण घेरां—ते ठाठां मारे,
डुब डुब मोए तारू सारे,
शोर करां तां मैं झल्ली आं।

मैं मनतारू सार की जाणां,
वञ्झ, चप्पा, ना, तुला पुराना,
घुम्मण घेर ना टांघ टिकाणा,
रो रो छाटां तली आं।

पार चनाओ जंगल बेले,
ओत्थे ख़ूनी शेर बघेले,
झब रब मैनूं माही मेले,
एस फिकर विच्च गली आं।

बुल्हा शौह मेरे घर आवे,
हार शंगार मेरे मन भावे,
मूंह मुकट मत्थे तिलक लगावे,
जे वेखे तां भली आं।

प्रिय की चाह में मैं जल रही हूं

प्रभु प्रियतम की विरह वेदना का भावनापूर्ण चित्रण करते हुए साईं लिखते हैं कि मैं प्रिय की चाह में जल रही हूं और उसकी बाट जोहती हुई काग उड़ा रही हूं।

आधी रात का समय है, तारे लटक रहे हैं, कुछ एक लटक चुके हैं और कुछ एक लटकने शेष हैं। इस ब्राह्म वेला में मैं उठकर नदी के किनारे आ गई हूं, और नदी के पार जाने की प्रतीक्षा में खड़ी हूं।

इस चंदन नदी (प्रेम नदी) के किनारे बहुत शोर है, नदी की लहरें ठाठें मार रही हैं, भंवर भी पड़ रहे हैं। जो तैर सकते थे, वे भी नदी में डूब मरे। अब मैं पार जाने के लिए चीखने-चिल्लाने लगूं तो पगली ही समझी जाऊंगी।

मुझे तैरना नहीं आता, इस संसार नदी का भेद भी मैं नहीं जानती। मेरे पास न बांस है, न चप्पू। मेरी नाव भी पुरानी है। नदी में विकराल भंवर हैं, पैर टिकाने योग्य कोई स्थान भी नहीं। ऐसी अवस्था में मैं रो-रोकर हाथ मल रही हूं।

चनाब नदी के पार जंगल हैं, बेले हैं, वहां खूनी शेर हैं और बाघ भी हैं। किसी प्रकार मेरा प्रिय मुझे अविलम्ब मिल जाए, बस इसी चिंता में घुली जा रही हूं।

बुल्लेशाह कहते हैं कि यदि प्रिय पति मेरे घर आ जाए तो हार पहनना और श्रृंगार करना मुझे अच्छा लगने लगे। यदि वह सिर पर मुकुट रख दे, माथे पर तिलक लगा दे और वह मुझे नजर भरकर देख ले तो मैं भी भली-सी हो जाऊं।

तूहिओं हैं मैं नाहीं वे सजणा

तूहिओं हैं मैं नाहीं वे सजणा,
तूहिओं हैं मैं नाहीं । टेक ।

खोले दे परछावें वांगूं,
घुम रिहा मन माहीं ।

जे बोलां तूं नाले बोलें,
चुप रह्वां मन माहीं ।
जे सौवां तूं नाले सौवें,
जे तुरां तू राहीं ।

बुल्लिहा शौह घर आया मेरे,
जिंदड़ी घोल घुमाईं ।

तुम ही हो मैं नहीं हूं

अध्यात्म की उच्च अवस्था में जब साधक का अहं मिट जाता है तो उसे सर्वत्र प्रभु ही दिखते हैं। आपा नष्ट होने की अवस्था में वह पुकार-कर कहता है कि प्रिय, सभी कहीं तुम ही तुम हो । मैं नहीं हूं । तुम मेरे मन में इस प्रकार घूम रहे हो, जैसे किसी खंडहर में परछाईं घूमती है ।

तदाकारिता की स्थिति यह है कि यदि मैं बोलती हूं तो तुम मेरे साथ बोलते हो, मैं चाहूं तो भी मन के भीतर चुप नहीं रह सकती । जब मैं सो जाती हूं तो तुम मेरे साथ ही सोते हो, जब मैं चलती हूं तब भी तुम ही राह में मेरे साथ होते हो ।

बुल्लेशाह कहता है कि पति-परमेश्वर मेरे घर आया हुआ है और मैंने तन-मन-प्राण सब कुछ उस पर न्यौछावर कर दिया।

तेरा नाम तिहाई दा

तेरा नाम तिहाई दा,
साईं तेरा नाम तिहाई दा। टेक।

बुल्ल्हे नालों चुल्ल्हा चंगा
जिस पर ताम पकाई दा

रल्ल फकीरां मजलस कीती
भोरा भोरा खाई दा

रंगड़े वालों खिगर चंगा
जिस पर पैर घसाई दा

बुल्ल्हा शौह नूं सोई पावे
जेह्ड़ा बकरा बणे कसाई दा।

तेरा नाम सुमिरते हैं

साधना का मार्ग आत्म-विसर्जन, संतोष और अहंकार को त्यागने का है। इसी पक्ष को इस काफ़ी में उजागर किया गया है। साईं तो सीधे-सीधे कहते हैं हम तेरे नाम का सुमिरन करते हैं।

स्वामी, बस तेरे ही नाम का सुमिरन करते हैं।

बुल्ले से तो वह चूल्हा अच्छा है क्योंकि वह तपता है और जिस पर तुआम (भोजन) पकाया जाता है।

फ़क़ीर लोग इकट्ठा होते हैं। उनमें इतना संतोष भाव होता है कि वे थोड़ा-थोड़ा (बांटकर) भोजन खाते हैं।

अहंकार मनुष्य की सबसे बड़ी रुकावट है साधना के मार्ग में। अहंकारी व्यक्ति से तो वह पत्थर अच्छा है जिस पर पांव घिसकर साफ़ किया जाता है। पत्थर तक मैल छुटाने के काम आता है किन्तु अहंकार तो आत्मा पर मैल जमा करता है।

बुल्लेशाह कहता है कि शौहर (परमात्मा) को वही प्राप्त कर सकता है जो कसाई का बकरा बनने अर्थात् आत्म-विसर्जन के लिए तैयार हो। साधना की सफलता अपने को मिटाकर ही प्राप्त होती है।

तेरे इश्क़ नचाईआं कर थईया-थईया

तेरे इश्क़ नचाईआं कर थईया-थईया । टेक ।

तेरे इश्क़ ने डेरा मेरे अन्दर कीता,
भर के ज़हर पिआला मैं तां आपे पीता,
झबदे वहुड़ी वे तबीबा नहीं ते मैं मर गईआं ।

छुप गिआ वे सूरज बाहर रह गई लाली,
वे मैं सदके होवां मुड़ देवें जे विरवाली,
पीरा मैं भुल गईआं तेरे नाल न गईआं ।

एस इश्क़ दे कोलों मैनूं हटक न माए,
लाहू जांदड़े बेड़े केह् ड़ा मोड़ लिआए,
मेरी अकल जुं भुल्ली नाल म्हाणिआं गईआं ।

एस इश्क़ दी झंगी विच मोर बुलेंदा,
सानूं क़िबला तो क़ाबा सोह् णा यार दिसेंदा,
सानूं घायल करके फ़ेर ख़बर न लईआं ।

बुल्हा, शौह ने आंदा मैनूं इनायत दे बूहे,
जिसने मैनूं पुआए चोले सावे ते सूहे,
जां मैं मारी ए अड्डी मिल पिआ ए वहीआ ।

तेरे इश्क़ ने नचाया मुझे

अध्यात्म प्रेम के अनूठे रंगों का इस काफ़ी में वर्णन किया गया है। बुल्लेशाह कहते हैं, तेरे इश्क़ ने मुझे उन्मत्त की भांति नचाया है। सच्ची हालत तो यह है कि हे प्रियतम, तेरे इश्क़ ने मेरे अन्तर में डेरा जमा लिया है। अब मैं करूं भी तो क्या ? क्योंकि तेरे प्रेम का प्याला, जो

अब वियोग में ज़हर का प्याला बन गया है, मैंने खुद ही तो भरकर पिया था। इसलिए मेरे मुर्शिद, फ़ौरन चले आओ वरना मैं मर जाऊंगी।

सूर्य अस्त हो गया है, केवल दिवस-लालिमा ही शेष रह गई, यदि तुम पुनः दिखाई दे दो तो मैं तुम्हारी खातिर प्राण न्यौछावर करने को तैयार हूं। मुझसे भूल हो गई, मेरे मुर्शिद, क्योंकि मैं तुम्हारे साथ न जा सकी।

ऐ मेरी मां, मुझे इश्क़ की इस राह से मत रोको। मैं रुकूंगी नहीं। प्रम के इस तेज़ तूफ़ान में उतरकर जा रही नाव को कौन वापस ला सका है! मेरी मत मारी गई जो मैं प्रेम नदी के किनारे मल्लाहों के साथ चली गई।

यह प्रभु-प्रेम कितना आकर्षक और उन्मादपूर्ण है। देखो तो इस प्रम वाटिका में मोर बोल रहा है। क़िबला और क़ाबा का दर्शन मुझे अपने यार में ही होता है। मुझे घायल करके वह चला गया और मुझ बीमार का हाल-चाल लेने के लिए भी न आया।

बुल्लेशाह को कृपापूर्वक पति-परमेश्वर मुर्शिद शाह इनायत के द्वार पर ले आया। उसी ने मुझे यह हरा और पीला लिबास पहना दिया। जब मैं एड़ी मारकर नाचने लगी तो मुझे वही मिल गया। तेरे प्रेम ने न जाने मुझे कैसे नाच नचा दिए हैं।

तोबा मत कर यार

तोबा मत कर यार, कैसी तोबा है ?
नित पढ़ दे इस्तग़फ़ार कैसी तोबा है ।। टेक ।।

मूंहों तोबा दिलों न करदा,
इस तोबा थीं तरक न फड़दा,
किस ग़फ़लत ने पाइओ परदा,
तैनूं बख्शे क्यों गफ़्फ़ार ।

सावीं दे के लवें सवाए,
डिओढ़िआं तक बाज़ी लाए,
मुसलमानो ओह् कित्थों पाए,
जिसदा होवे इह् किरदार ।

जित न जाणा ओत्थे जावें,
हक़ बेगाना मुक्कर खावें,
कूड़ किताबां सिर ते चावें,
होवे कीह् तेरा इतबार ।

ज़ालम ज़ुलमों नाहीं डर दे,
अपणी कीतियों आपे मर दे,
नाहीं ख़ौफ़ खुदा दा कर दे,
ऐथे ओत्थे होण ख़वार ।

तौबा मत करो, प्यारे

जब तक व्यक्ति अन्दर से पश्चात्ताप नहीं करता तो केवल शाब्दिक पश्चात्ताप सर्वथा निरर्थक है। यही भाव इस काफ़ी में व्यक्त करते हुए कहा गया है मेरे प्यारे, शाब्दिक तौबा मत करो। ऐसी तौबा से क्या

लाभ ? तुम प्रतिदिन बार-बार इस्तग़फ़ार (तौबा, क्षमा) कहते हो, इससे भला क्या होगा ?

दिखावे की तौबा करने वालों की चर्चा करते हुए साईं जी कहते हैं कि मुंह से तो तुम तौबा करते हो लेकिन दिल से तौबा नहीं करते। मौखिक रूप से भले ही तुम तौबा करते हो, किन्तु जो चीजें तुम्हें छोड़ देनी चाहिए उनको त्यागते नहीं। न जाने तुम्हारे मन पर किस लापरवाही का परदा पड़ा है ! ऐसी हालत में भला क्षमाशील भगवान् तुम्हें क्यों क्षमा करें !

मुंह से तौबा कहते हुए भी जो बराबर देकर उसके बदले में उसका सवाया प्राप्त करता है और ड्योढ़ा वसूल करने पर नज़र है। जिसका चलन ऐसा हो—उसे सच्चे मुसलमान की गति कैसे प्राप्त हो सकती है !

तौबा करने के साथ यदि व्यक्ति जिधर जाना नहीं चाहिए, उधर ही जाता है, बेगानी वस्तु बिना अधिकार के लूटकर खा जाता है और धर्मग्रन्थों की झूठी कसमें खाता है। ऐसे हालात में तुम पर भरोसा क्यों किया जाए ?

ज़ालिम लोग निस्संकोच ज़ुल्म करते रहते हैं, उन्हें अंततः अपने ही कुकर्मों का दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है, उन्हें ईश्वर का भी भय नहीं। ऐसे लोग इस लोक में तो दुःख पाते ही हैं, परलोक में भी दुःख पाते हैं।

दिल लोचे माही यार नूं

दिल लोचे माही यार नूं। टेक।

इक हस हस गल्लां कर दियां,
इक रोंदियां धोंदियां फिरदियां,
कहो फुल्ली बसन्त बहार नूं,
दिल लोचे माही यार नूं।

मैं न्हाती धोती रैह् गई,
कोई गंढ सजण दिल बैह् गई,
भाह लाविये हार-शंगार नूं,
दिल लोचे माही यार नूं।

मैं दूतियां घाइल कीती आं,
सूलां घेर चुफेरों लीती आं,
घर आ माही दीदार नूं,
दिल लोचे माही यार नूं।

दिल तड़प रहा प्रिय मिलन के लिए

प्रिय के वियोग में विरहिणी के दुख और ईर्ष्या भाव का सुन्दर चित्रण करते हुए इस काफ़ी में उसकी मनोदशा का चित्रण है। विरहिणी का मन प्रिय से मिलने के लिए तड़प रहा है।

उसे इस बात से ईर्ष्या हो रही है कि इस प्रियतम से कुछ सखियां (साथी) हंस-हंसकर बातें करती हैं, कुछ रोती-चीखती भटक रही हैं। इस बसन्त बहार से कहो कि मेरा मन प्रिय के मिलन के लिए तड़प रहा है।

मैं नहा-धोकर तैयार थी, किन्तु प्रिय के साथ न चल सकी, इससे

प्रिय के मन में न जाने क्या गांठ पड़ गई। अब इस साज-शृंगार को क्या आग लगाऊं? वह मिल नहीं रहा है और मन प्रिय मिलन के लिए तड़प रहा है।

मुझे तो आसपास घिरी इन दूतियों-कुटनियों ने घायल कर दिया है, चारों ओर से शूलों ने मुझे बेध रखा है। प्रिय, घर लौट आओ और दर्शन दो। मैं अपने मन की बात बता रही हूं कि मेरा मन प्रिय-मिलन के लिए तड़प रहा है।

पत्तियां लिखां मैं शाम नूं

पत्तियां लिखां मैं शाम नूं मैनूं पिया नज़र न आवे।
आंगन बना डरावना कित विधि रैण विहावे ॥

पांधे पंडित जगत के मैं पूछ रही आं सारे।
पोथी, वेद क्या दोस है जो उलटे भाग हमारे।

भाइआ वे जोतिषिया, इक सच्ची बात भी कहियो।
जे मैं हीनो भाग दी, तुम चुप ना रहियो।

भज सक्का ते भज्ज जावां, सभ तज के करां फ़क़ीरी।
पर दुलड़ी, तिलड़ी, चौलड़ी, है गल विच प्रेम ज़ंजीरी।

नींद गई कित देस नूं, ओह भी बैरन मेरो।
मत सुफ़ने विच आन मिले, ओह नींदर केह्ड़ी।

रो रो जीउ वलांदिआं ग़म करदी आं दूणा।
नैनों नीर भी ना चल्लण किस कीता टूणा।

साजन तुमरी प्रीत से मुझको हाथ की आया।
छतर सूलां सिर झालिआ पर तेरा पंथ न पाया।

प्रेम नगर चल वस्सिये जित्थे वस्से कंत हमारा।
बुल्लिहआ शौह तों मंगनी हां जे दे नज़ारा।

सांझ को मैं पातियां लिखती हूं

प्रियतम के वियोग में पागल विरहिणी की व्यथा और मानसिक अवस्था का बड़ा ही स्वाभाविक और मार्मिक चित्रण करने वाली इस काफ़ी में कहा गया है कि मैं हर दिन प्रतीक्षा करते-करते सांझ को अपने प्रिय को पत्र लिखती हूं लेकिन वह सलोना पिया दिखाई ही नहीं देता।

मेरे लिए तो मेरे घर का आंगन भी डरावना बन गया है, भला मैं अकेली ही रात कैसे गुज़ारूं।

पत्र लिखकर हृदय से लगा लेती हूं और आंखों में आंसू भर-भर आते हैं। विरह की अग्नि में मैं जल रही हूं और उस अग्नि में मेरा हृदय फुंका जा रहा है। संसार-भर के पंडितों-ज्ञानियों से मैं पूछ रही हूं कि अरे कोई मेरा दोष तो बता दो (प्रेम करना क्या बुरा है) या मेरा भाग्य ही उल्टा है (जो प्रिय का दर्शन नहीं हो पा रहा)।

हे ज्योतिषी भाई, तुम मेरी भाग्यरेखा बताकर सच्ची-सच्ची बात बता दो। अगर मैं सचमुच हीनभाग्य हूं तो चुप मत लगा जाना, साफ-साफ बता देना।

यदि मैं भाग सकती तो भाग निकली होती और सब कुछ त्यागकर फ़क़ीरी वेश अपना लिया होता। लेकिन मैं भाग भी तो नहीं सकती क्योंकि प्रेम की दुहरी, तिहरी, चौहरी ज़ंजीर मेरे गले में पड़ी है। जो गिरफ़्तार है, वह कैसे भाग सकता है!

नींद भी मेरी बैरिन हो गई है, न जाने कहां चली गई है। ऐसी नींद भी तो नहीं आती, जिससे स्वप्न में ही प्रिय मिल जाए। मैं रो-रोकर अपना जी जला रही हूं और प्रतिदिन दूना ग़म करती हूं। अब तो आंखों के आंसू भी सूख गए हैं, पता नहीं किसने क्या जादू-टोना कर दिया है।

मेरे प्रिय, अब तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे साथ प्रेम करके मुझे क्या हाथ लगा? सिर पर कांटों का ताज भी पहन लिया, लेकिन तेरा मार्ग तक प्राप्त नहीं हो सका। अब तो बस यही इच्छा है कि चलकर प्रेमनगर ही बस जाइए, जहां हमारा कंत रहता है। बुल्लेशाह तो अपने शौह (सद्गुरु) से यही प्रार्थना करता है कि वह प्रिय का दर्शन करा दे।

पाया है, किछु पाया है

पाया है किछु पाया है,
मेरे सतिगुर अलख लखाया है। टेक।

कहूं बैर पड़ा कहूं बेली है,
कहूं मजनूं है कहूं लेली है,
कहूं आप गुरु कहूं चेली है,
आप आपका पंथ बताया है।

कहूं महजत का करतारा है,
कहूं बणिआ ठाकरद्वारा है,
कहूं बैरागी जयधारा है,
कहूं सेखन बणि बणि आया है।

कहूं तुरक मुसल्ला पढ़ते हो,
कहूं भगत हिन्दू जप करते हो,
कहूं घोर घुंडे में पड़ते हो,
कहूं घर-घर लाड़ लड़ाया है।

बुल्हा शहु का मैं बेमुहताज़ होइआ,
महाराज मिल्या मेरा काज होइआ,
दरसन पिया का मुझे इलाज होइआ,
आप आप में आप समाया है।

कुछ पाया है

पूर्ण अद्वैत की भावाभिव्यक्ति करती हुई इस काफ़ी में बताया गया है कि ज्ञान प्राप्त हो जाने की अवस्था में अनेकता में व्याप्त एकता के

दर्शन होते हैं। उसी अवस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मैंने कुछ पा लिया है, मेरे सतगुरु ने मुझे वह अलख प्रभु दिखा दिया है।

सब कुछ में उसी का प्रसंग है, इसे बताते हुए साईं कहते हैं कि प्रभु कहीं बैर करता है और कहीं मित्र भी है। कभी वह मजनूं नज़र आता है तो कभी लैला। वह स्वयं गुरु भी है और शिष्या भी। उसने स्वयं अपने-आप को अपने ही पंथ का परिचय दिया है।

वह कहीं मस्जिद में विराजता है तो कहीं उसके लिए ठाकुरद्वारा बना हुआ है। वह स्वयं ही कहीं (मस्जिद और मंदिर से बाहर) जटाधारी बैरागी की तरह घूमता नज़र आता है और कहीं शेख का रूप धारण करता है।

हे प्रभु, तुम्हारी लीला अपार है। तुम कहीं तुरक बनकर, मुसल्ला पर बैठकर नमाज़ पढ़ते हो तो कहीं भक्त बनकर जप करते हो। कभी घूंघट के घोर अन्धकार में चले जाते हो और कभी घर-घर जाकर सभी से लाड़-प्यार करते हो।

बुल्ला अब अपने अहम् से मुक्त हो गया है। मुझे महाराज मिले और मेरा काज (कार्य, विवाह) सम्पन्न हो गया, प्रिय के दर्शन से मेरे सभी रोग कट गए हैं, वह सर्वव्यापक स्वयं अपने-आप में ही समाया हुआ है।

पांधिया हो

झब सुख दा सुनेहुड़ा ल्यावीं वे पांधिया हो । टेक ।

मैं दुबड़ी, मैं कुबड़ी होई आं,
मेरे दुखड़े सब बतलावीं वे पांधिया हो ।

"खुल्ली लिट गल, हत्थ परांदा"
एक कहिंदिआं न शर्मावीं वे पांधिया हो ।

यारां लिख किताबत भेजी,
किसे गोशे बह समझावीं वे पांधिया हो ।

बुल्हा शौह दियां मुड़न मुहारां,
लै पतियां तूं झब धावीं वे पांधिया हो ।

हे मुसाफ़िर

विरहिणी अपनी दीन दशा किसे बताये, वह प्रिय मिलन के अभाव में उसके संदेश की ही प्रतीक्षा करती है । इसलिए वह मुसाफ़िर से अनुरोध करती है कि फ़ौरन सुख का संदेशा लेकर आना ।

विरह में गलते-गलते मैं दुबली हो गई हूं, कुबड़ी हो गई हूं । हे पथिक, तू मेरे सभी दुःख उसे बता देना । मेरी लटें खुली हुई गले में पड़ी हैं और वेणी हाथों में लिए हुए हूं । मेरी यह अवस्था उसे बताने में संकोच नहीं करना, मुसाफ़िर ।

यदि करुणा करके मेरा प्रिय तुम्हारे हाथों कोई पत्र स्वयं लिखकर भेजे तो एकांत में बैठकर चुपके से पढ़ लेना और मुझे समझा देना, हे मुसाफ़िर !

बुल्ला कहता है कि प्रिय पति लौटकर चला आए, इसलिए तुम पत्र लेकर अविलम्ब दौड़ लेना, मुसाफ़िर ।

पानी भर-भर गइयां सब्भे

पानी भर-भर गइयां सब्भे आपो अपनी वार । टेक ।

इक भरन आइयां, इक भर चल्लियां,
इक खलियां ने बांह पसार ।

हार हमेलां पाइयां गल विच,
बांहीं छणके चूड़ा,
कन्नीं बुक-बुक झुम्मर बाले,
सभ आडंबर पूरा,
मुड़ के शौह ने झात न पाई,
ऐवें गिआ सिंगार ।

हत्थी मैंहदी, पैरीं मैंहदी,
सिर ते धड़ी गुंधाई,
तेल, फुलेल, पानां दा बीड़ा,
दंदीं मिस्सो लाई,
कोई जे सद्द पिओ ने गुज्झी,
विस्सरिआ घर बार ।

बुल्लिहआ, शौह दी पंध पवें जो—
तां तूं राह पछाणे,
"पौन सतारां", पासौं मंगिआ,
दा पिआ त्रै काणे,
गूंगी, डोरी, कमली होई,
जान दी बाज़ी हार ।

पानी भर-भर कर गईं सभी

साधक चाहे जितना यत्न करे, मार्गदर्शक गुरु के बिना प्रयास सफल नहीं होते। इसी भाव का वर्णन करते हुए साईं लिखते हैं कि सभी सखियां पानी भर-भरकर चली गयीं। कुछ एक पानी भरने के लिये अभी-अभी आई हैं और कुछ एक भरकर चली जा रही हैं। कुछ एक ऐसी भी हैं जो बांहें पसारे खड़ी हैं।

प्रिय को प्राप्त करने के लिए सभी श्रृंगार किया है, गले में हार-हमेलें सजा ली हैं, बांहों में चूड़ां छनछना रहे हैं, कानों में बड़े-बड़े झूमर हैं, बालें हैं यानी कि श्रृंगार का सभी आडंबर पूरा है किन्तु प्रिय पति ने देखा तक नहीं और समूचा श्रृंगार व्यर्थ हो गया।

श्रृंगार के अतिरिक्त मैंने हाथों में मेहंदी रचाई, पैरों में भी मेहंदी रचाई, सिर भी खूब अच्छी तरह गुंदाया, बालों में खुशबूदार तेल डाला, दांतों में मिस्सी लगाई और होंठों को भी रंग लिया। पता नहीं (मृत्यु का) क्या गूढ़ संदेश आया कि सारा घर-बार ही बिसर गया।

बुल्लेशाह कहते हैं, यदि तुम प्रिय पति के मार्ग पर चलो तभी तो उस मार्ग को पहचान सकोगे। लेकिन हुआ यह कि (चौसर के खेल में) मैंने मांगा 'पौ बारा' और दांव पड़ा 'तीन काने'। अर्थात् प्रिय मिलन की जगह प्रिय विरह ही हाथ आया। अब मैं गूंगी, बहरी और पगली हो गई हूं। सच तो यह है कि मैंने जीवन की बाज़ी हार दी।

वस कर जी

वस कर जी, हुण बस कर जी,
काई गल असां नाल हस कर जी। टेक।

तुसीं दिल मेरे विच वसदे सी,
तद सानूं दूर क्यों दसदे सी,
घत जादू दिल नूं खसदे सी,
हुण आइओ मेरे वस कर जी।

तुसी मोइआं नूं मार ना मुकदे सी,
नित्त खिद्दो वांगूं कुटदे सी,
गल करदे सां गल घुटदे सी,
हुण तीर लगाइओ कस कर जी।

तुसीं छपदे हो, असां पकड़े हो,
असां विच्च जिगर दे जकड़े हो,
तुसीं अजे छपण नूं तकड़े हो,
हुण रहो पिंजर विच वस कर जी।

बुल्हा शौह असीं तेरे बरदे हां,
तेरा मुख वेखण नूं मरदे हां,
बंदी वांगूं मिनतां करदे हां,
हुण कित वल जासो नस कर जी।

बस करो जी

विरहिणी आत्मा विरह दुख सहते-सहते दुखियाकर कहती है कि बस करो जी, अब बस करो। नाराज़ी छोड़कर हमसे हंस-हंसकर कोई बात करो।

यों तो तुम सदा मेरे हृदय में वास करते रहे किन्तु कहते यही रहे कि हम दूर हैं। जादू डालकर दिल छीन लेने वाले अब जाकर कहीं मेरे वश में आए हो।

तुम इतने निर्दयी कैसे हो कि मरे हुए को भी मारते रहे और तुम्हारा मारना तो कभी समाप्त न हुआ। कपड़े की कतरनों से बने गेंद की तरह हमें पीटते रहे। हम बात करना चाहते हैं तो तुम गला घोंटकर हमें चुप करा देते हो और अब की बार तो तुमने हम पर कसकर बाण चलाया है।

तुम छुपना चाहते हो लेकिन हमने तुम्हें पकड़ लिया है। पकड़ ही नहीं लिया बल्कि हमने तुम्हें जी-जान से जकड़ लिया है। हम जानते हैं कि तुम बहुत बलवान् हो, अभी भी भागकर छुप सकते हो लेकिन अब तो हमारे अस्थि-पंजर में ही रहो।

बुल्ला कहता है कि हे प्राणपति, हम तो तुम्हारे परम दास हैं, तुम्हारा मुख देखने के लिए तरस रहे हैं, बंदी की तरह अनुनय-विनय कर रहे हैं, इस विनय के सामने भला अब दौड़कर किधर जाओगे ?

बुल्लिहआ, की जाणां मैं कौन

बुल्लिआ, की जाणां मैं कौन ? । टेक ।

ना मैं मोमिन विच्च मसीतां,
ना मैं विच्च कुफ़र दियां रीतां,
ना मैं पाक आं विच पलीतां,
ना मैं मूसा ना फिरऔन ।

ना मैं विच्च पलीती पाकी,
ना विच शादी, ना ग़मना की,
ना मैं आबी ना मैं ख़ाकी,
ना मैं आतिश ना मैं पौन ।

ना मैं भेत मज़ब दा पाया,
ना मैं आदम-हव्वा जाया,
ना कुछ अपणा नाम धराया,
ना विच बैठण ना विच भौण ।

अव्वल आख़र आप नूं जाणां,
ना कोई दूजा आप पछाणां,
मैथों वध ना कोई सिआणा,
बुल्लिहआ औह खड़ा है कौन ?

बुल्लेशाह, क्या जानूं मैं कौन हूं

साधना की एक ऐसी अवस्था आती है जिसे संत बेखुदी कह लेते हैं, जिसमें उसका अपना आपा अपनी ही पहचान से परे हो जाता है । इसीलिए बुल्लेशाह कहते हैं कि मैं क्या जानूं कि मैं कौन हूं ?

मैं मोमिन नहीं कि मस्जिद में मिल सकूं, मैं कुफ्र के मार्ग पर चलने वाला भी नहीं हूं, न मैं पलीत (अपवित्र) लोगों के बीच पवित्र व्यक्ति हूं और न ही पवित्र लोगों के बीच अपवित्र हूं। मैं न मूसा हूं और फ़िरऔन भी नहीं हूं।

इस प्रकार मेरी अवस्था कुछ अजीब है, न मैं पवित्र लोगों के बीच, न अपवित्र लोगों के बीच हूं और मेरी मनोदशा न प्रसन्नता की है, न उदासी की। मैं जल अथवा स्थल में रहने वाला भी नहीं हूं, न मैं आग हूं और पवन भी नहीं।

मज़हब का भेद भी मैं नहीं पा सका। मैं आदम और हव्वा की सन्तान नहीं हूं, इसलिए मैंने अपना कोई नाम भी नहीं रखा है। न मैं जड़ हूं और जंगम भी नहीं हूं।

कुल मिलाकर कहूं तो मैं किसी को नहीं जानता। मैं बस अपने-आप को ही जानता हूं, अपने से भिन्न किसी दूसरे को मैं नहीं पहचानता। बेखुदी अपना लेने के बाद मुझसे बढ़कर सयाना और कौन होगा? बुल्लेशाह कहते हैं कि मैं तो यह भी नहीं जानता कि भला वह कौन खड़ा है।

बुल्ल्हे नूं समझावण आइयां

बुल्ले नूं समझावण आइयां,
भैणा ते भरजाइयां। टेक।

"मन्न लै बुल्लिहआ साडा कह्णा,
छड दे पल्ला, राइयां,
आल नबी औलादि अली नूं,
तूं क्यों लीकां लाइयां?"

"जेह्ड़ा सानूं, सैयद आखे,
दोज़ख़ मिले सज़ाइयां,
जो कोई सानूं राईं आखे,
भिश्तीं पींघां पाइयां।"

राईं साईं समनीं थाईं,
रब दियां बेपरवाहियां,
सोह्णियां परे हटाइयां,
ते कोझियां लै गल लाइयां।

जे तूं लोड़े बाग़ बहारां,
चाकर हो जा राइयां,
बुल्ल्हे शाह दी ज़ात की पुछणें,
शाकिर हो रज़ाइयां।

बुल्ले को समझाने आईं

बुल्लेशाह सैयद जाति के थे और उनके मुर्शिद (सद्गुरु) इनायतशाह अराईं जाति के। बुल्ले से उच्च कुल के लोग नाराज़ थे कि कुलीन बुल्लेशाह निम्न जाति के व्यक्ति का मुरीद हो इसलिए बहिनें और भावजें

बुल्लेशाह को समझाने आई और कहने लगीं :

"अरे बुल्लेशाह, हमारा कहना मान लो और सब्ज़ी उगाने, खेती करने वाले इस अराईं का साथ छोड़ दो। तुम तो नबी के कुटुम्ब से हो, अली के वंशज हो। अपनी इस ज़िद से क्यों उनकी परनिन्दा का कारण बनते हो?"

बुल्लेशाह ने उत्तर में कहा कि जो हमें सैयद कहेगा, उसे दोज़ख की सज़ा मिलेगी और जो हमें अराईं कहेगा, वह बहिश्त में झूला झूलेगा।

भगवान् कितना बेपरवाह है कि अब तो मुझे सब जगह अराईं ही अराईं नज़र आता है। ऐसा लगता है कि भगवान् ने सुन्दरियों को परे हटाकर असुन्दरियों को गले लगा लिया है।

यदि तुम्हें प्रभु-प्राप्ति के आनन्द की इच्छा हो तो मुर्शिद अराईं का सेवक हो जा। अरे भाई, गुरु का शिष्य हो जाने पर बुल्लेशाह की जाति क्यों पूछते हो? वह तो शाकिर (सब्र-शुक्र करने वाला) है और खुदा की रज़ा (खुदा की मर्ज़ी) में राज़ी है।

मैं कमली आं

हाज़ी लोक मक्के नूं जांदे,
मेरा रांझा माही मक्का,
नी मैं कमली आं।

मैं ते मंग रांझे दी होई आं,
मेरा बाबल करदा धक्का,
नी मैं कमली आं।

हाज़ी लोक मक्के नूं जांदे,
मेरे घर विच नौशौह मक्का,
नी मैं कमली आं।

विच्चे हाज़ी विच्चे ग़ाज़ी,
विच्चे चोर उचक्का,
नी मैं कमली आं।

हाज़ी लोक मक्के नूं जांदे,
असां जाणा तख़्त हज़ारे[1],
नी मैं कमली आं।

जित वल यार उते वल क़ाबा,
भावें फोल किताबां चारे[2],
नी मैं कमली आं।

---

१. तख़्त हज़ारा=रांझे का गांव।
२. चार किताबें=तोरैत, ज़बूर, इंजील, क़ुरान।

मैं पगली हूं

अन्तर्मुखी हो जाने पर साधक के लिए ज्ञान, तीर्थ सब कुछ परमप्रिय प्रभु हो जाता है। यही भाव बुल्लेशाह ने स्वयं को पगली बताकर इस काफ़ी में व्यक्त किया है। लोग हज के लिए मक्के की ओर जाते हैं लेकिन मुझे तो मेरा प्रिय रांझा ही मक्का प्रतीत होता है। दुनिया की दृष्टि में मैं तो हूं ही पगली।

रांझे के साथ मेरा विवाह निश्चित है, मेरा बाबुल कुछ और ही ज़ोर-ज़बरदस्ती कर रहा है। पर मैं तो पगली हूं। अपनी बात पर ही अड़ी हूं।

हाजी लोग तो हज के लिए मक्के की ओर जाते हैं, लेकिन मुझे तो अपने घर में मेरा दूल्हा (मुर्शिद) ही मक्का प्रतीत होता है तो उसी के प्रेम में पगली हूं।

मेरे अन्दर ही हाजी हैं, ग़ाज़ी हैं (शुभ गुण हैं) और मेरे अन्दर ही चोर-उचक्के भी हैं (दुर्गुण हैं)। री मैं तो पगली हूं।

हाजी लोग तो मक्के की ओर जा रहे हैं लेकिन मैं तो तख़्त हज़ारे की ओर ही जाऊंगी क्योंकि मैं तो हूं ही पगली।

जिस ओर मेरा प्रिय है मेरे लिए तो उसी ओर क़ाबा है। यह ऐसा सत्य है जो चारों किताबों में मिलेगा। अरी, मैं तो पगली हूं।

माटी कुदम करेंदी

माटी कुदम करेंदी यार
वाह-वाह माटी दी गुलज़ार। टेक।

माटी घोड़ा, माटी जोड़ा,
माटी दा असवार।
माटी माटी नूं दौड़ावे,
माटी दा खड़कार।
माटी माटी नूं मारन लग्गी,
माटी दे हथियार।
जिस माटी पर बहुती माटी,
सो माटी हंकार।
माटी बाग़ बग़ीचा माटी,
माटी दी गुलज़ार।
माटी माटी नूं वेखण आई,
माटी दी ए बहार।
हस खेड फिर माटी होवै,
सौंदी पाउं पसार।
बुल्हा एह बुझारत बुज्झें,
तां लाह सिरों भुईं मार।

माटी की उछल-कूद

माटी उछल-कूद रही है मित्र। इस माटी की रौनक़ भी क्या खूब है।

माटी का घोड़ा है, उस पर माटी का ही झोल है, और माटी का ही सवार है। माटी को माटी ही दौड़ा रही है। माटी का ही कोड़ा है और

उसकी चटाख आवाज भी माटी की है। माटी माटी को पीट रही है। उसके हथियार भी माटी के ही हैं।

जिस माटी के पास कुछ अधिक ही माटी है, उसे व्यर्थ का अहंकार हो जाता है। यह बाग़-बग़ीचा भी माटी का है, फूलों की क्यारी भी माटी की है।

माटी ही माटी को देखने आई है, यह सारी रौनक़ माटी की ही है। संसार के भौतिक आनन्द लूटकर (मनुष्य) पुनः माटी हो जाता है। और पांव पसारकर मृत्यु की गोद में सो जाता है। बुल्लेशाह कहता है कि इस पहेली को समझना चाहते हो, तो सारा बोझ सिर से उतारकर धरती पर पटक दो।

सब कुछ मिट्टी से बना और व्यर्थ का अहंकार बढ़ाने के बाद भी अन्ततः व्यक्ति मिट्टी में मिल जाता है, इस सर्वज्ञात तथ्य को इस काफ़ी में अत्यधिक सहजता से व्यक्त किया गया है। इसके बोल सीधे हृदय पर असर डालने वाले हैं।

मुरली बाज उठी

मुरली बाज उठी अनघातां
सुण सुण भुल्ल गईआं सभ बातां । टेक ।

लग गये अनहद बाण न्यारे,
छूट गये दुनिया कूड़ पसारे,
साईं मुख वेखण दे वणजारे,
दूइयां भुल गईयां सभ बातां ।

हुण असां चंचल मिरग फहाया,
ओसे मैनूं बन्ह बहाया,
हरफ़ दुगाना उसे पढ़ाया,
रह गईआं दो-चार रुकातां ।

बुल्हा शाह मैं तद बिरलाई,
जद दी मुरली कान्ह बजाई,
बउरी होई ते तैं वल धाई,
खोजीआं कित वल दस्त वरातां ?

मुरली बज उठी

अचानक ही अनहद ध्वनि की मुरली बज उठी है और उसे सुनकर मैं सभी कुछ भूल गई हूं ।

अनहद शब्द के विचित्र बाण मेरे हृदय को बींध गये हैं जिससे सारा संसार नाशवान् लगने लगा है । दुनिया का झूठा पसारा मुझसे छूट गया है । अब तो उस प्रियतम का मुख देखने की ही उत्कट इच्छा रह गई है । बाक़ी की सभी बातें भूल गई हैं ।

अब तो हमने चंचल मृग रूपी मन जाल में फंसा लिया है । लेकिन

उसने भी मुझे बांधकर बिठा लिया अर्थात् मुझे निश्चल कर दिया है। नमाज़े शुक्राना भी उसी ने पढ़ाया है। अब तो बस दो-चार रुकातें[1] शेष र गई हैं। (उसका सारा प्रेमगीत पढ़ लिया है, बस थोड़ा ही पूछना शेष रह गया है।)

बुल्लेशाह कहते हैं कि वह अनहद नाद सुनकर मैं व्याकुल हो गई हूं। जब से कान्ह ने मुरली बजाई है, मैं बावरी होकर तेरी ओर ही भाग रही हूं। कहो जी, अब प्रेम का हाथ तुम किस ओर बढ़ा रहे हो?

(अनहद नाद की गुप्त मुरली का राग प्रकट हो जाने पर संसार की असारता और प्रियतम के वियोग की भावना तीव्रतर हो जाती है। उस आनन्द की प्राप्ति के लिए चित्त व्याकुल रहता है।)

---

१. रुकात = नमाज़ का एक हिस्सा खड़े होने से बैठने तक ।

मेरी बुक्कल दे विच चोर

मेरी बुक्कल दे विच चोर नी,
मेरो बुक्कल दे विच चोर। टेक।

साधो किस नूं कूक सुणावां,
मेरी बुक्कल दे विच चोर,
चोरी चोरी निकल गिआ,
ते जग विच पै गिआ शोर।

जिस जाता तिस जाण लिआ,
ते होर होए, झुर मोर,
चुक गए सारे झगड़े झेड़े,
निकल पिआ कोई होर।

मुसलमान सिवे तों डरदे,
हिन्दू डरदे गोर,
दोवें एसे दे विच मरदे,
इहो दोहां दी खोर।

किते रामदास किते फ़तेह मुहम्मद,
इहो क़दीमी शोर,
मिट गिआ दोहां दा झगड़ा,
निकल पिया कुझ होर।

अरभ मुनव्वर बांगां मिलियां,
सुणियां तख्त लहौर,
शाह इनायत कुंडियां पाइयां
लुक छुप खिचदा डोर।

मेरी बुक्कल में चोर

मेरी बुक्कल में चोर है री। वह चितचोर कहीं बाहर नहीं, अन्दर ही है। वह चोर तो मेरी बुक्कल में है।

साधो, मैं चीख-चीखकर किसे सुनाऊं कि मेरी बुक्कल में चोर है। वह चोरी-चोरी निकल गया, और संसार-भर में शोर मच गया। वह प्रिय संसार-भर में तरह-तरह के रंग-रूप धारण करता है जिससे न जाने कितने झगड़े उठ खड़े होते हैं।

जिसने उसे समझने का यत्न किया, उसे ज्ञान हो गया, शेष सभी मोरों के समान झूरते-बिसूरते रह गए। जब वास्तविकता का पता चला तो सभी विवाद समाप्त हो गए। खोजने पर ज्ञात हुआ कि असली मालिक तो कोई और ही है।

मुसलमान मृतक को जलाये जाने से डरते हैं, और हिन्दू कब्र में दफ़नाए जाने से डरते हैं, दोनों इसी भय से मरते रहते हैं कि कहीं ऐसा न हो जाए तो दोजख (नर्क) न मिले और यही उनके परस्पर वैमनस्य का कारण है।

कहीं किसी मनुष्य का नाम रामदास रख दिया जाता है और कहीं कोई मनुष्य फ़तेह मुहम्मद के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल से यही झगड़ा चला आता है। जब यह जान लिया कि परमात्मा दोनों में एक ही है तो दोनों का आपसी झगड़ा मिट गया।

यहां यह संकेत भी प्राप्त होता है कि क़ादिरी सम्प्रदाय का प्रथम सतगुरु पीर दस्तगीर बग़दाद का रहने वाला था। वहां की नमाज़ की अजान लाहौर में सुनाई देती है। यानी शाह इनायत उस ईश्वरीय वाणी को सुन सकते हैं। मेरे मुर्शिद शाह इनायत ने मुझे (मछली की तरह) कुंडी में फंसा रखा है। वही छुपकर डोरी को खींचता रहता है।

मैं क्योंकर जावां काबे नूं

मैं क्योंकर जावां काबे नूं,
दिल लोचे तख़्त हज़ारे नूं । टेक ।

लोकीं सजदा काअबे नूं करदे,
साडा सजदा यार पिआरे नूं ।

औगुण देख न भुल्ल मियां रांझा,
याद करीं उस कारे नूं ।

मैं अनतारू तरन न जाणां,
शरम पई तुध तारे नूं ।

तेरा सानी कोई नहीं मिलिआ,
ढूंढ लिया जग सारे नूं ।

बुल्हा शौह दी प्रीति अनोखी,
तारे औगुण हारे नूं ।

मैं कैसे काबा जाऊं

प्रभु अन्दर विराजमान है । उसे खोजने बाहर कहीं जाना व्यर्थ है । इस भाव को व्यक्त करते हुए इस काफ़ी में कहा गया है कि मैं काबा की ओर कैसे जाऊं क्योंकि मेरे दिल में तो इनायतशाह के तख़्त हज़ारे की चाह है ।

सामान्यत: लोग तो काबा के सामने माथा टेकते हैं लेकिन मेरा माथा तो यार के सामने ही झुकता है ।

मियां रांझा, अवगुण देखकर मुझे भूल मत जाना, बल्कि उस स्मरणीय कार्य को याद रखना कि सृष्टि रचना के समय सृष्टि में भेजते हुए

वचन दिया था कि तुम्हें वापस लाने के लिए स्वयं जगत् में आऊंगा।

मैं अनाड़ी हूं, मुझे तैरना नहीं आता, भला यह भवसागर कैसे पार करूंगा ? मेरी लाज रखना। मुझे तैराकर पार कर देना तथा मुझे उबार लेना।

मैंने सारा संसार ढूंढ़कर देखा लेकिन तेरे समान और कोई नहीं मिला।

शोह की प्रीति तो बड़ी अनोखी है। जिस पर वह प्रीति करता है उस अवगुणों से भरे का भी उद्धार कर देता है। सद्गुरु (मुर्शिद) भगवान् का रूप है जो आत्मा को हाथ पकड़कर पार उतार देता है।

मैंनू की होइया

मैंनू की होया मैथों गई गवाती मैं। टेक।
क्यों कमली आखे लोका मैंनू की होया है।
मैं विच वेखां तां मैं नहीं होंदी,
मैं विच वसणा एं तैं।
सिर तों पैरीं तीक वी तूं ही,
अन्दर-बाहर है।
इक वार इक उरार सुणींदा,
इक बेड़ी इक नैं।
मनसूर पिआरे कह्या अनलहक़,
कहु कहाया कैं।
बुल्लहाशाह उसे दा आशक़,
अपणा आप वंजाया जैं।

मुझे यह क्या हुआ है

प्रभु के साथ तदाकार भाव होने पर साधक की जो विचित्र स्थिति हो जाती है, उसी का वर्णन इस काफ़ी में किया गया है। सब कुछ बदला हुआ है। मुझे क्या हुआ, मुझमें से 'मैं' गुम हो गई।

लोग मुझे पगली क्यों कहते हैं? अरे भाई, यह तो बता दो कि मुझे क्या हुआ है।

यदि मैं अपने अन्दर झांककर देखती हूं तो वहां मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं है; मेरे अन्दर तो तुम्हीं रहते हो। सिर से पांव तक तुम्हीं तुम हो, अन्दर और बाहर भी तुम्हीं हो।

सुनते थे कि नदी (भवसागर) के दो किनारे होते हैं। एक इधर का किनारा दूसरा उधर का। वहां एक नाव है और उसी से नदी पार करते हैं। लेकिन प्रभु मिलन के बाद हम इधर और उधर दोनों किनारों से मुक्त हो गए। अब न नाव है और न नदी।

प्रिय मन्सूर ने कहा : 'अनलहक़', बताओ तो उससे यह शब्द किसने कहलवाया? जिसने मन्सूर से यह कहलाया बुल्लेशाह को उसी से प्रेम है और इस प्रकार उसने अपना अहम् त्याग दिया है।

मैनं कौण पछाणे

मैनं कौन पछाणे,
मैं कुझ गो गई होर नी। टेक।

हादी मैनूं सबक़ पढ़ाया,
ओत्थे होर न आया-जाया,
मुतलिक ज़ात जमाल विखाया,
वहदत पाया ज़ोर नी।

अव्वल होके लामकानी,
ज़ाहर बातन दिसदा जानी,
रही न मेरी नाम निशानी,
मिट गया झगड़ा-शोर नी।

प्यारे आप जमाल विखाली,
होइ कलंदर मस्त मवाली,
हंसा दी हुण वेख के चाली,
भुल गई कागां टोर नी।

अब मुझे कौन पहचाने

प्रभु की साधना में लग जाने और उसका आनन्द पा लेने पर तो कुछ और ही हो गई हूं। अब मुझे कौन पहचानेगा?

गुरु ने मुझे शिक्षा दी कि यह मार्ग ऐसा है कि वहां अन्य कोई आता या जाता नहीं है। उसने मुझे निरपेक्ष सौंदर्य का दर्शन करवा दिया है और मैं उसी के रंग में ऐसी रंग गई हूं कि अद्वैत ज़ोर दिखाने लगा है।

वह अनादि पुरुष है और जन्म-मरण से परे है, किन्तु वही प्रियतम

प्रत्यक्ष होकर सगुण और परोक्ष रूप में निर्गुण दिखाई देता है। प्रिय से तदाकार हो जाने के पश्चात् अब मेरा तो नामोनिशान ही नहीं रह गया है। उससे एक रूप होने के बाद सभी कलह-क्लेश मिट गए।

प्रिय ने स्वयं अपना सौंदर्य दिखाया—उसने स्वयं को कलंदर[1], मस्त और मवाली[2] आदि रूपों में दर्शन दिये। अब हंसों की चाल देख चुकने के बाद स्वभावतः मैं कौओं की चाल भूल गई।

---

१. कलंदर=फ़क़ीर के पांच दरजों में से एक। ये दरजे हैं : ग़ौस, क़ुतब, वली, अबदाल, कलंदर।

२. मवाली=दास्य भावना वाला फ़क़ीर।

बेक़ैद

मैं बेक़ैद, मैं बेक़ैद;
ना रोगी, ना वैद।

ना मैं मोमन, ना मैं काफ़र,
ना सैयद, ना सैद।

चौधीं तबक़ीं सैर असाडा,
किते ना हुंदा क़ैद।

ख़राबात है जात असाडी,
ना सोमा, ना ऐब।

बुल्लेशाह दी ज़ात की पुच्छनै,
ना पैदा ना पैद।

मैं बन्धन मुक्त

मैं किसी क़ैद में नहीं, किसी भी बंधन में बंधा नहीं रह गया हूं। मैं न तो रोग की क़ैद में हूं, और न वैद की क़ैद में।

मैं मोमिन[1] नहीं हूं और काफ़िर[2] भी नहीं हूं। न मैं सैयद[3] हूं, और सैद[4] भी नहीं हूं।

---

१. ईमान लाने वाला, मुसलमान।
२. बेदीन, ख़ुदा को न मानने वाला।
३. रसूल अल्ला की बेटी फ़ातिमा के कुल का व्यक्ति।
४. सय्यद का ही अपभ्रंश।

चौद हो तबकों[1] (भुवनों) में हम घूमते हैं। सर्वत्र आना-जाना होने पर भी हम कहीं क़ैद नहीं होते। हम कहीं किसी मोहपाश में नहीं बंधते।

हमारी प्रकृति ही मस्ती या बेखुदी की है। हम अपने में न कोई शोभाशाली गुण मानते हैं और न हममें कोई अवगुण है।

बुल्लेशाह के वजूद की बात क्या पूछते हो, वह तो है ही नहीं, गुम है। न पैदा हुआ है और न पैदा होगा अर्थात् वह आवागमन से मुक्त हो गया है।

---

१. चौदह भुवन—सात तबक़ ज़मीन, सात तबक़ आकाश। अर्थात्त् चौदह भुवन।

'रांझा-रांझा' करदी

'राझा-रांझा' करदी हुण मैं आपे रांझा होई। टेक।
सद्दो मैनं धीदो रांझा हीर न आखो कोई।

रांझा मैं विच, मैं रांझे विच ग़ैर ख़िआल न कोई,
मैं नाहीं ओह आप है अपणी आप करे दिलजोई।

जो कुझ साडे अन्दर वस्से ज़ात असाडो सोई,
जिस दे नाल मैं न्योंह लगाया ओही जैसी होई।

चिट्टी चादर लाह सुट कुड़िये पहन फ़क़ीरां दी लोई,
चिट्टी चादर दाग़ लगेसी, लोई दाग़ न कोई।

तख़्त हज़ारे लै चल बुल्लिहआ, स्याली मिले न ढोई,
रांझा रांझा करदी हुण मैं आपे रांझा होई।

रांझा-रांझा कहती

सद्‌गुरु (मुर्शिद) परमात्मा-स्वरूप होता है इसलिए मुर्शिद से अभेदता परमात्मा की अभेदता में बदल जाती है। इस अभेदता में शिष्य अपना अस्तित्व ही भूल जाता है। सदगुरु की आत्मा के रंग में रंग जाने की अवस्था का वर्णन इस काफ़ी में करते हुए कहा गया है कि 'रांझा-रांझा' कहती-कहती मैं स्वयं ही रांझा हो गई हूं। अब मुझे सब कोई 'रांझा' के नाम से पुकारो। मुझे हीर न कहो।

अब तो एकात्म-अभेद की स्थिति यह है कि रांझा मेरे अन्दर है, मैं रांझे के अन्दर हूं, और हम एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। अब मैं तो रह ही नहीं गई, जो कुछ भी है, वह स्वयं ही है और आत्म आनन्द की तुष्टि के लिए वही अपनी दिलजोई स्वयं करता है।

जो हमारे अन्दर बस रहा है, अब तो वही हमारी ज़ात है। अब तो

हालत यह है कि जिसके साथ हमने प्रेम किया है, हम उसी जैसे हो गए हैं।

अरी लड़की, उतार फेंक यह सफ़ेद चादर और पहन ले फ़क़ीरों की लोई। सफ़ेद चादर में तो दाग़ लग जायेगा, लेकिन फ़क़ीरी लोई में कोई दाग़ नहीं लगता।

बुल्लेशाह कहते हैं कि हमें तख़्त हज़ारे[1] ले चलो, स्याल[2] में हमारा ठिकाना नहीं है क्योंकि 'रांझा-रांझा' कहती-कहती, मैं स्वयं रांझा हो गई हूं।

---

१. रांझे का गांव, प्रिय का देश।

२. हीर का गांव, यह संसार।

मैनूं लगड़ा इश्क़

मैनूं लगड़ा इश्क़ अवलड़ा
अव्वल दा, रोज़ अज़ल दा। टेक।

विच कड़ाहो तिल-तिल पावे,
तलिआं नूं चा तलदा।

मोइआं नूं एह वल-वल मारे,
दलियां नूं एह दलदा।

की जाणां कोई चिणग कखी ए,
नित सूल कलेजे सलदा।

बुल्ल्हा, शौह दा न्योंह अनोखा,
ओह नहीं रलाइआं रलदा।

मुझे इश्क़ हो गया है

मुझे अपने प्रियतम से अनोखा और अक्खड प्रेम हो गया है। उसका यह प्रम सृष्टि रचना के पहले दिन से ही है।

साधक को अनेक विपत्तियां उठानी पड़ती हैं। मेरा प्रियतम मुझे तिल-तिल करके कड़ाही में डालता और मुझ तली हुई को और तलता है। (प्रभु अपने भक्त को कष्टों पर कष्ट देता ही चला जाता है।)

यह प्रेममार्ग है ही ऐसा कि इसमें जो मर चुके हैं, प्रेम उन्हें और भी घेर-घेरकर बार-बार मारता है, शूल की तरह कलेजे को बराबर सालता रहता है।

बुल्लेशाह कहते हैं कि उस प्रियतम का प्रेम बड़ा ही अनोखा है। उसका जैसा प्रेम किसी और का नहीं हो सकता। उसका प्रेम सबसे अलग है। उसका अहैतुक प्रेम अनूठा है।

रांझा जोगीड़ा बन आया

रांझा जोगीडा, बन आया नी,
वाह् सांगी सांग रचाया नी । टेक ।

इस जोगी दे नैन कटोरे,
बाज़ा वांगू लैंदे डोरे,
मुख वेखिआं दुख जावण छोड़े,
इन्हां अक्खियां लाल लखाया नी ।

इस जोगी दी कीनी निशानी,
कन्न विच्च मुन्दरां गल विच गानी,
सूरत उसदी यूसफ़ सानी,
उस अलफ़ों अहद बनाया नी ।

रांझा जोगी ते मैं जुगिआनी,
उसदी ख़ातर भरसां पानी,
एवें तां पिछली उमर विहाणी,
उस हुण मैनूं भरमाया नी ।

बुल्हा शौह दी हुण गत पाई,
पीत पुरानी मुड़ मचाई,
एह गल कीकण छपे छुपाई,
लै तख़्त हजारे नूं धाया नी ।

रांझा जोगी बनकर आया है

निराकार और प्रकाशमय आत्मा माया के प्रभाव से देह धारण करती है । परमात्मा (रांझा) को भी संसार में योगी का वेश धरकर

आना होता है। सतगुरु हीर को प्रभु रूप की असली झलक दिखाता है। हीर (आत्मा) को जब रांझे में प्रभु के दर्शन होते हैं तो वह स्वतः उस योगी की तरफ खिंची चली जाती है और प्रीति-पुरातन जाग जाती है। बुल्लेशाह ने इसी भाव को इस काफ़ी में व्यक्त करते हुए लिखा है कि रांझा (परमात्मा) जोगी बनकर आया है और कैसा अनुपम रूप है और उस स्वांगधारी ने कैसा स्वांग रचाया है।

इस जोगी के नयन जैसे मद के प्याले हैं और ये आंखें बाज़ के समान मेरे चारों ओर मंडराती रहती हैं। देखने से सुख मिलता है और सारे दुःख छूट जाते हैं। इसने प्रिय के साक्षात् दर्शन करवा दिये हैं।

इस जोगी की निशानी क्या है? इसके कानों में मुद्रिकायें हैं, गले में माला है। वह इतना रूपवान् है, जैसे वह दूसरा यूसफ़ हो। उसने अलिफ़ को अहद[1] बना दिया है।

रांझा जोगी है, मैं उसकी जोगिन हूं। मैं तो उसके लिए सब कुछ करने को तैयार हूं। मैं तो उसकी पनिहारन बन जाऊंगी। मुझे तो दुख यही है कि योगी से प्रेम होने से पहले का समय व्यर्थ ही बीत गया। लेकिन अब जब वह मिल गया है तो उसने मुझे पूरी तरह अपने वश में कर लिया है।

बुल्लेशाह कहता है, अब मैं पति परमेश्वर को जान गई हूं और पुरानी प्रेमाग्नि पुनः धधक उठी है। यह प्रेम अब कैसे भी छुपाये नहीं छुप सकता। मेरा प्रिय मुझे तख़्त हज़ारे[2] की ओर लेकर चल पड़ा है।

---

१. अहद—एक अकेला; खुदा का सिफ़ाती नाम

२. तख़्त हज़ारा--रांझे का गांव

वहदत दा दरिआ

की करदा हुण की करदा,
तुसी कहो खां दिलबर की करदा। टेक।

इकसे घर विच वसदियां रसदियां,
नहीं बणदा विच परदा।
विच मसीत नमाज़ गुज़ारे,
बुतख़ाने जा वड़दा।

आप इक्को कई लख घरां दे,
मालक सभ घर घर दा,
जित वल वेखां तित वल तू हो,
हर दी संगत करदा।

मूसा ते फ़िरऔन बणा के,
दो हो क्योंकर लड़दा,
हाज़र नाज़र ख़ुदनवीस तद,
दोज़ख़ किस नूं खड़दा।

वाह-वाह वतन कहींदा एहो,
इक दब्बींदा इक सड़दा,
वहदत का दरियाउ सचावां,
ओथे हिस्से सभ कोई तरदा।

इत बल आपे उत बल आपे,
आपे साहिब बरदा,
अजब तमाशा देख तूं बुल्लिहआ,
सभ करदा नहीं करदा।

अद्वैत नदी

प्रभु की लीलाएं विचित्र हैं। वह सब कुछ करता है और कुछ नहीं करता इसलिए बुल्लेशाह पूछते हैं कि मेरा प्रिय क्या कर रहा है, अब वह क्या कर रहा है ? देखकर तुम बताओ तो कि प्रिय क्या कर रहा है।

हम दोनों एक ही घर में रहते हैं (आत्मा-परमात्मा एक ही हैं), तो फिर बीच में यह परदा कैसा ? कभी वह मस्जिद में नमाज़ अदा करता है, और कभी मन्दिर में भी चला जाता है।

लाख घरों में रहने पर भी वह स्वयं एक ही है। और हर घर का मालिक भी वही है।

जिधर देखता हूं उधर तू ही नज़र आता है। हर एक के साथ होकर तू सबसे छल कर रहा है।

मूसा[1] और फ़िरऔन[2] दोनों को ही उसने स्वयं बनाया है। तब वही दो रूपों में होकर आपस में क्यों लड़ रहा है ? वह हर जगह उपस्थित है और सब कुछ देखता है, सभी कुछ उसी का बनाया हुआ है फिर वह दोज़ख (नरक) में किसे ले जाता है। सब तो उसके अपने हैं।

कमाल है कि इस एक ही देश में, किसी को दफ्न किया जा रहा है कोई जलाया जा रहा है। इस झंझट से परे अद्वैत नदी ही सच्ची है जिसमें सभी तैरते दिखाई देते हैं (कोई डूबता नहीं)।

इधर देखो तो वही है, और उधर भी स्वयं वही है, वह मालिक भी है और ग़ुलाम भी। बुल्लेशाह उसके अद्भुत खेल देख ले। वही सब कुछ कर रहा है, हालांकि कुछ भी नहीं करता।

---

१. मूसा—इज़राइली पैग़म्बर जिन्हें दिव्य प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

२. फ़िरऔन—मिस्र का बादशाह जिसने इज़राइल पर घोर अत्याचार किये।

वाह-वाह रमज़ सजण दी

वाह-वाह रमज़ सजण दी होर । टेक ।

कोठे चढ़कर देवां होका,
इश्क़ विहाजो कोई न लोकां,
इस दा मूल न खाणा धोखा,
जंगल बस्ती मिले न ठौर ।

दे दीदार होया जद राही,
अचनचेत प्यी गल विच फाही,
उण्हडी कीती बेपरवाही,
मैनं् मिलिया ठग लाहौर ।

आशिक़ फिरदे चुप-चपाते,
जैसे मस्त सदा मदमाते,
दामे ज़ुल्फ़ दे अन्दर फाते,
ओत्थे चल्लै वस्स न ज़ोर ।

बुल्लिहआ शौह नं् कोई न देखे,
जो देखे सो किसे न लेखे,
उसदा रंग न रूप न रेख ए,
ओही होवे होके चोर ।

वाह-वाह सजन का रहस्य

सजन (परमात्मा) का रहस्य अनोखा है । क्या कमाल है !

प्रेम का रोग ऐसा विषम और उद्दाम है कि उसके वश में आकर न जाने कितने कष्ट होते हैं इसलिए बुल्लेशाह कहते हैं कि कोठे पर चढ़-

कर सभी को उच्च स्वर में सावधान कर रहा हूं कि लोगो, इश्क़ का व्यापार भूलकर भी न करना। प्रेम का धोखा कभी न खाना। क्योंकि प्रेमी के लिए जंगल या बस्ती में, कहीं भी ठौर नहीं।

दर्शन देकर जब प्रेमी चल दिया, तो महसूस हुआ कि गले में फंदा पड़ गया है। उसने बहुत बेपहरवाही दिखाई। ऐसे लगा जैसे किसी लाहौरी ठग ने ठग लिया हो।

आशिक़ लोग सर्वथा मौन रहकर प्रेम में दीवाने हुए भटकते रहते हैं, जैसे मस्त हों या मदमत्त हों। उनका मन प्रिय के केशपाश में फंसा रहता है। वहां किसी का वश नहीं चलता, किसी का ज़ोर काम नहीं आता।

बुल्लेशाह कहते हैं कि उस पति-परमेश्वर को कोई देख नहीं सकता, जो कुछ जिसे हम देखते हैं, वह किसी काम का नहीं। लेकिन एक मुश्किल भी सामने आती है कि प्रिय का न तो रूप है, न रंग है, और न रेखा है। अदृश्य होने पर भी सभी जगह वही है।

संभल के नेहु लाए

दिलबर संभल के नेहु लाए,
पिच्छों पछोतावहिंगा ।
जाणेंगा तूं तां,
जां रोइ रोइ हाल वजावेंगा ।

ओथै इश्क़ ज़ुलीखा है,
ओथै आशक़ तड़फन सै,
ओथै मजनूं करदा है,
ओथों तूं क्या ल्यावहिंगा ।

जाहि जि जाना फेरि,
ओथै बेपरवाहीआं ढेर,
ओथै उछिल खलोंदे शेर,
ओथै तूं भी छलिया जावहिंगा ।

कलालां दा धरि पासे,
ओथै आवण मसत पिआसे,
भरि भरि पीन पिआले ख़ासे,
ओथै तूं भी जीउ ललचावहिंगा ।

बुल्हा ग़ैर शरा न होइ,
सुख दी नींझर भरि करि सोइ,
अनलहक़ न मुखों बुगोइ,
चढ़ सूली ढोला गावहिंगा ।

संभल कर प्रेम करना

प्रेम मार्ग की कठिनाइयों को जानने के कारण साईं बुल्लेशाह चेताते हैं कि हे प्रिय, संभलकर प्रेम करना, अन्यथा बाद में पछताना पड़ेगा।

तुम्हें पता ही तब चलेगा जब रो-रोकर अपनी अधोगति का वर्णन करेगा।

इश्क़ में तुम्हारा हाल जुलैखा-सा[1] हो जायेगा। वहां सैंकड़ों आशिक़ तड़पते हैं और वहां मजनूं हाय-हाय करता है। सोच-समझ लो कि वहां तुम क्या प्राप्त कर सकोगे।

मेरे समझाने पर यदि नहीं मानते और यदि जाना ही है तो चला जा। वहां ढेरों बेपरवाहियां हैं। इतनी बेरहमी भी है कि वहां शेरों तक के दिल दहल जाते हैं। मैं बताये देता हूं कि वहां तुम भी छले जाओगे।

वहां कलालों[2] का घर समीप ही है। वे खुदाई इश्क़ में मस्त हुए अपनी-अपनी प्यास बुझाने आते हैं, और भर-भर कर प्रेम प्याले पीते हैं।

वहां जाओगे तो तुम्हारा मन भी उनकी श्रेणी में जाने को ललचाने लगेगा।

बुल्लेशाह कहता है कि शरह से बेगाना न हो, और इस प्रकार सुख की गहरी नींद सो जा, अपने मुख से अनलहक़[3] कभी न कहना, वरना तुम्हें सूली पर चढ़कर प्रेम गीत गाना पड़ेगा।

---

१. जुलैखा—यूसुफ़ की प्रेमिका जो यूसुफ के न मिलने पर अंधी हो गई।

२. कलाल—खुदाई इश्क़ की मदिरा से मस्त कर देनेवाला, मुर्शिद।

३. अनहलक़—मन्सूर का नारा (मैं हक़ यानी खुदा हूं)। इसी के कारण उसे सूली पर चढ़ना पड़ा है।

से वणजारे आए

से वणजारे आए नी माए,
से वणजारे आए,
लालां दा ओह् वणज करेंदे,
होका आख सुणाए।

सुणिआ होका, मैं दिल गुज़री,
मैं वो लाल लै आवां,
इक ना इक कन्नां विच पा के,
लोकां नूं दिखलावां।

कच्ची, कच्च विहाजण जाणां,
लाल विहाजण चल्ली,
पल्ले ख़र्च न, साख न काई,
वेखो हारन चल्ली।

जां मैं मुल्ल ओह्नां नूं पुछिआ,
मुल्ल करन ओह भारे,
डम्म सूई दा कदे न खाधा,
ओह पुच्छण सिर बारे।

जेह्ड़ियां गइयां लाल विहाजण,
ओहनां सीस लुहाए,
से वणजारे आए नी माए,
से वणजारे आए।

सैकड़ों बंजारे आए

नाम रूपी हीरों का व्यापार करने वाले सन्त-महात्मा और क़ामिल-मुर्शिद बनजारों (व्यापारी) को देखकर जीव के मन में उन्हें खरीदने की

इच्छा होती है। जब उस हीरे का मूल्य 'शीश देवा' सुनते हैं तो लोग भाग खड़े होते हैं। भक्ति या नाम का रतन खरीदने की अवस्था का वर्णन इस काफ़ी में किया गया है।

मां, सैंकड़ों ही बनजारे आए हुए हैं। वे हीरे-जवाहरात का व्यापार करते हैं और ऊंची आवाज़ से पुकारकर हमें सुनाते हैं।

मैंने जब यह पुकार सुनी तो जी में आया कि मैं भी एक हीरा खरीद लूं और एक-न-एक हीरा कानों में लटका लूं और लोगों को दिखाऊं।

मैं अप्रौढ़ हूं और कांच तक नहीं परख सकती। फिर मैं चली हूं हीरा खरीदने। पल्ले पैसा न था, मेरी कोई साख भी न थी। देखो, इस सौदे में सीधे-सीधे हानि के लिए चल दी।

जब मैंने उनसे हीरे का मोल पूछा तो उन्होंने उसका भारी मोल बताया—शीश। मैंने कभी सूई तक की चुभन सहन नहीं की थी और वे मांगने लगे कि इस हीरे के बदले सिर कटवा सकोगी? अर्थात् अहं त्याग सकोगी?

जो-जो हीरे-जवाहरात खरीदने गईं, उन्होंने अपने सिर कटवा लिए। सैंकड़ों ही बनजारे आए हैं मां, सैंकड़ों ही बनजारे आए हैं।

हम गुम हुए

अब हम गुम हूए गुम हूए,
प्रेम नगर के सैर ॥ टेक ॥

अपने आप नूं सोध रहा हूं,
न सिर हाथ न पैर।
कित्थे पकड़ लै चले घरां थीं,
कौण करे निरवैर।

ख़ुदी खोई अपणा अपचीना,
तब होई कुल ख़ैर।
बुल्लहा साईं दोहीं जहानी,
कोई न दिसदा ग़ैर।

हम गुम हुए

प्रेममार्ग में साधक का अपनापा समाप्त हो जाता है। इसे ही लक्ष्य करके इस काफ़ी में कहा गया है कि अब हम प्रेमनगर नामक शहर में गुम हो गए हैं।

अब स्थिति यह है कि मैं अपने-आप को ढूंढ़ रहा हूं, लेकिन सिर, हाथ या पांव—कुछ नहीं मिलता।

अरे भाई मुझे अपने घर से पकड़कर कहां ले चले हो। तुम्हें बैर से मुक्त कौन करे?

जब अहं खो दिया तभी अपने-आप को पहचान पाया। अपनी पहचान होने पर सर्वत्र कुशल-ही-कुशल है।

बुल्लेशाह के लिये तो लोक और परलोक में एक ही स्वामी है, उसे अब कोई भी ग़ैर नहीं दीखता।

हिन्दू नहीं ना मुसलमान

हिन्दू नहीं ना मुसलमान,
बहिये त्रिंजण[1] तज़ अभिमान। टेक।

सुन्नी ना, नाहीं हम शीआ,
सुलहकुल का मारग लीआ।

भुक्खे नहीं, नहीं हम रज्जे,
नंगे ना, नहीं हम कज्जे।

रोंदे ना, नहीं हम हसदे,
उजड़े ना नहीं हम वसदे।

पापी ना, सुधरमी ना,
पाप पुन्न की राह न जां।

बुल्लेशाह जो हरि चित लागे,
हिन्दू तुरक दूजन तिआगे।

हिन्दू नहीं, मुसलमान भी नहीं

अध्यात्म की उच्च भूमि पर पहुंचकर साधक-संत अद्वैत भावयुक्त हो जाता है और कह उठता है कि मैं न तो हिन्दू हूं और न मुसलमान। सब आत्माएं सखियों की भांति अभिमान त्यागकर परलोक की तैयारी करें।

---

१. त्रिंजण—कुंवारी लड़कियों का समूह, जहां वे मिलकर चरखा कातती हैं। अर्थात् इहलोक, जहां सभी लोग जीवन-यापन करते हैं। चरखा पर काते हुए सूत से लड़कियां अपने विवाह के लिए दहेज़ तैयार करती हैं। इस प्रकार, इहलोक में अर्जित पुण्य परलोक में काम आते हैं।

वस्तुतः हम तो आत्मा मात्र हैं। हम न शिया हैं न सुन्नी। हम भूखे भी नहीं हैं और भरे पेट भी नहीं हैं। हम न वस्त्र पहने हैं और न निर्वस्त्र (नंगे) हैं। न हम रोते हैं और न हंसते हैं। घर त्याग कर हम न तो उजड़ों की भांति रहते हैं और न ही किसी एक स्थान पर बसे हुए हैं। हम न पापी हैं, न सुधर्मी हैं। हम न तो पाप के मार्ग पर चलते हैं और न पुण्य के मार्ग पर। सच्चाई तो यह है कि जो अपना चित्त (मन) हरि में लगा लेते हैं, उनके लिए हिन्दू-तुरक जैसा द्वैत मिट जाता है।

दोहड़े

१. जैसी सूरत ऐन दी, वैसी सूरत ग़ैन,
इक नुक़ते दा फ़रक है भुल्ली फिरे कौनैन ।

२. चल बुल्लिहआ, चल ओथे चलिये, जित्थे सारे अन्हें,
ना कोई साडी जात पछाणे, ना कोई सानूं मन्ने ।

३. भट्ठ नमाज़ां चिक्कड़ रोज़े, क़लमे ते फिर गई सियाही,
बुल्ल्हेशाह शौह अंदरों पाया, भुल्ली फिरे लुकाई ।

४. उसका मुख इक जोत है, घूंघट है संसार,
घूंघट में वो छुप गया, मुख पर आंचल डार ।

५. इट्ट खड़क्के, दुक्कड़ वज्जे, तत्ता होवे चुल्ल्हा,
आण फ़कीर ते खा खा जावण, राज़ी होवे बुल्ल्हा ।

६. बुल्ल्हा पी शराब ते खाह क़बाब, पर बाल हड्डा दी अग्ग,
चोरी कर ते भन्न घर रब दा, उस ठग्गां दे ठग नूं ठग्ग ।

७. धरमसाल धड़बाई वसदे, ठाकरद्वारे ठग्ग ।
विच मसीते रहंण कुसीते, आशिक़ रहण अलग्ग ।।

८. होर ने सब्भे गल्लड़ियां, अल्ला अल्ला दी गल्ल ।
कुझ रौला पाया आलमां, कुछ काग़ज़ां पाया झल्ल ।।

९. वारे जाइये ओह्नां दे, जेह्ड़े मारन गप्प शड़प्प ।
कौडी लब्भी दे देवण, ते बुग़चा घाऊं घप्प ।।

१०. आशिक़ होइओं रब्ब दा, होई मलामत लाख ।
तैनूं 'काफ़िर-काफ़िर' आखदे तूं 'आहो-आहो' आख ।।

११. मुल्लां ते मसालची दोहां इक्को चित्त।
लोकां करदे चानणा आप हनेरे नित्त ॥

दोहे

१. ऐन अक्षर की जो शक्ल (अल्ला) है, वही ग़ैन अक्षर (ग़ैर-अल्ला) की शक्ल है। जिसे हम अल्ला कहते हैं, वह ग़ैर-अल्ला से भिन्न नहीं। ऐन और ग़ैन में एक बिन्दु-भर का अन्तर है, अल्ला और ग़ैर-अल्ला में अन्तर बहुत कम है, दोनों लोक यों ही भटक रहे हैं।

२. बुल्लेशाह, वहां चलो, जहां सभी अंधे हों। वहां कोई हमारी जाति नहीं पहचानेगा, न ही वहां हमें कुछ विशिष्ट मानेगा।

३. भाड़ में जाएं नमाज़ें, कीचड़ में गिरे रोज़े और क़लमे पर भले ही स्याही फिर जाए, बुल्लेशाह कहता है कि शौह (प्रिय, पति) तो अंदर से प्राप्त होता है, लोग यों ही भूले हुए हैं।

४. उसका मुख तो प्रखर ज्योति (नूर) है, यह संसार घूंघट है, वह संसार में यों छुपा हुआ है, जैसे घूंघट में मुखड़ा छुप जाता है। वह स्वयं मुख पर आंचल डालकर छुपा हुआ है। (परमात्मा माया पट के पीछे छिपा लीला कर रहा है।)

५. आपस में लड़ाई चलती रहती है, तो भी ढोलक बजती रहती है और चूल्हा भी तपता रहता है, फ़कीर लोग आते हैं और खा-पीकर चले जाते हैं, यह देखकर बुल्ला बहुत खुश रहता है।

६. बुल्ला कहता है कि (बेखुदी की) शराब पी, हड्डियों की आग जला, अपने-आप को जुहद (तपस्या) में तपा, अपने अहं को क़बाब की तरह खा जा। चोरी कर (आत्म-प्रदर्शन न कर) और इस तरह उस सबसे बड़े ठग, भगवान् को ठग ले।

७. धर्मशालाओं में धड़वाई (तोलने वाले, दुकानदार) और ठाकुरद्वारों में लुटेरे बस गये हैं। मस्जिदों में वे बसते हैं जो वहां रहने के योग्य नहीं। भगवान् के प्रेमी तो इन सबसे अलग रहते हैं।

८. अन्य बातें नगण्य हैं, महत्त्वपूर्ण बात तो भगवान् की है, कुछ

शोर विद्वान् कर रहे और कुछ पागलपन कागज़ों (पोथियों) ने पैदा किया है।

९. शाबाशी तो उन्हें दीजिये जो गप्पें हांकते रहते हैं, उन्हें कहीं कौड़ी पड़ी मिल जाए तो लौटा देते हैं किन्तु थैला मिल जाए तो चुपचाप दबा जाते हैं।

१०. जब से तुम भगवान् के भक्त हुए हो, तब से तुम्हें लाखों लानत-मलामतें सुननी पड़ रही हैं। लोग तुम्हें 'काफ़िर है, काफ़िर है' कहते हैं, तुम चुपचाप 'आहो-आहो' (हां-हां) कहते रहो। अर्थात् भगवान् के भक्त को असीम धैर्यवान् होना चाहिए।

११. मुल्ला और मसालची दोनों का स्वरूप एक जैसा है। ये दोनों ही और लोगों के लिये तो प्रकाश फैलाते हैं लेकिन स्वयं अंधेरे में ही रहते हैं।

फुटकल

भरवासा की अशनाई दा,
डर लगदा बेपरवाही दा।
वसल होइवां मैं नाल सजण के,
शर्म हया नूं गवा के।
विच चनन मैं पलंघ बिछाया,
यार सुत्ती गल ला के।

गल समझ लई तां रौला दी,
इह राम रहीम ते मौजा दी।

पा पढ़िआं तों नसदा हां,
मैं पा पढ़िआं तों नसदा हां।
आलिम-फ़ाज़िल मेरे भाई,
पा पढ़िआं मेरी अकल गवाई।
पा पढ़िआं तों नसदा हां,
मैं पढ़िआं तों नसदा हां।

अपने तन दी ख़बर नहीं,
साजन दी ख़बर लिआवे कौन,
ना हौं ख़ाकी ना हौं आतिश,
ना पापी ना पौण,
बुल्लिआ साईं घट-घट रंविआ,
ज्यौं आटे विच लौण।

हाज़ी लोक मके नूं जांदे,
असां जाणा तख़त हज़ारे।
जित वल यार उसे वल क़ाबा,
भावे फोल किताबां चारे॥

फुटकर

अपनी आशनाई (प्यार) का क्या भरोसा ? (मैं कर पाऊं न कर पाऊं लेकिन इससे भी बड़ा) डर तो यह है कि कहीं प्रभु प्रियतम मेरी तरफ़ से बेपरवाह ही न हो जाए।

(यह प्रेम मार्ग है ही ऐसा कि) इसमें सारी हया-शर्म गंवा देने के बाद ही उससे मिलना सम्भव होता है। मैंने खुली चांदनी में अपना पलंग बिछाया और प्रिय के गले से लिपटकर सो गई।

(बाद में देखा तो लोगों ने हंगामा खड़ा कर रखा है) जब प्रेम का सार समझ में आ गया तो हंगामा कैसा ? (जब सब एक ही हैं तो) राम, रहीम और मौला में अन्तर कैसा ?

अल्पज्ञानियों से दूर भागता हूं। भाई, मैं तो अल्पज्ञानियों से दूर भागता फिरता हूं। ज्ञानी और विद्वान् तो मेरे भाई हैं लेकिन अल्पज्ञानी मुझे परेशान करते हैं। इसलिए अल्पज्ञानियों से मैं दूर-दूर भागता हूं।

सामान्यत: लोगों को अपने-आप की ही खबर नहीं होती। तब साजन (प्रभु प्रियतम) की खबर कौन ले आये। मैं न तो मिट्टी से बना हूं और न आग से। न मैं पवन हूं और न पानी। बुल्लेशाह कहता है कि स्वामी तो घट-घट में रम रहा है जैसे आटे के हर कण में नमक मिल जाता है।

हाजी लोग हज करने के लिए मक्के की ओर जाते हैं। लेकिन मुझे तो (अपने प्रिय से मिलने के लिए) तख़्त हज़ारे की ओर जाना है। जिस तरफ़ मेरे (प्रभु प्रियतम) यार का घर है, मेरे लिए तो उसी ओर मक्का और क़ाबा है। अगर मेरी बातों पर विश्वास नहीं आता तो बेशक चारों किताबें (तौरेत, जबूर, इंजील और क़ुरान) खोलकर देख लो। (सभी में मेरे इस कथन का समर्थन मिलेगा)।

▭▭

आंख की किरकिरी	१६/-
काबुलीवाला	१४/-
विरह की सांझ	१४/-
दृष्टि-दान	१४/-
योगायोग	३०/-
बांसुरी/मुक्तधारा	१४/-

शरत्‌चंद्र

बाम्हन की बेटी	१४/-
देवदास	१४/-
चरित्रहीन	२०/-
मंझली दीदी	१४/-
गृहदाह	१४/-
दत्ता	१४/-
काशीनाथ	१४/-
श्रीकान्त	१८/-
विराज बहू	१४/-
विप्रदास	१४/-

आचार्य चतुरसेन

आभा	१५/-
सोने की पत्नी	१४/-
पत्थर युग के दो बुत	१४/-
बहते आंसू	१४/-
सोना और खून-१	१८/-
सोना और खून-२	१८/-
राज्याभिषेक	१२/-
सोमनाथ	१८/-
सह्याद्रि की चट्टानें	१४/-

लाल किला	१४/-
पूर्णाहुति	१५/-
ढहती हुई दीवार	१४/-

अमृता प्रीतम

नागमणि	१४/-
डाक्टर देव	१४/-
नीना	१५/-
हीरे की कनी	१५/-
बंद दरवाजा	१५/-
तेरहवां सूरज	१५/-
रसीदी टिकट (आत्म-कथा)	१८/-

शिवानी

विवर्त्त	१४/-
माणिक	१४/-
गैंडा	१२/-
विषकन्या	१४/-
कस्तूरी मृग	१५/-
स्वयंसिद्धा	१५/-
कृष्णवेणी	१५/-
कैंजा	१५/-
रति विलाप	१५/-
भैरवी	१५/-
श्मशान चम्पा	१५/-
मेरा भाई	१५/-
चिर स्वयंवरा	१५/-
करिए छिमा	१५/-

संत-भक्त-कवि-माला

तुलसीदास	प्र०/सुदर्शन चोपड़ा	१४/-
कबीर	,,	१४/-
अमीर खुसरो	,,	१४/-
सूरदास	,,	१४/-
मीरा	,,	१४/-
गुरु नानक	डा० महीप सिंह	१४/-
संत रैदास	योगेश गुप्त	१४/-
चैतन्य महाप्रभु	डॉ० शान्तिस्वरूप त्रिपाठी	१४/-
संत ज्ञानेश्वर	डॉ० प्रभाकर माचवे	१४/-

लोकप्रिय संत-भक्त-कवि



बुल्लेशाह

डॉ0 हरभजन सिंह

जिस जन लगिआ इश्क़ कमाल।
नाचे बेसुर ते बेताल ।

(ईश्वर से जिसे पूर्ण प्रेम हो जाता है, यानी वह उसी में लीन हो जाता है, तब उस जुनून के आलम में वह इस तरह नाचने लगता है कि अपनी सुध-बुध खोकर सुर और ताल भी भूल जाता है।)

- पंजाब की माटी की सौंधी गंध में गूंजता है एक नाम **बुल्लेशाह** और फिर उस धरती से उठकर आकाश में छा जाता है। भारतीय संत परम्परा का अद्वितीय नाम है 'बुल्लेशाह'। उच्च गीलनियां में सन् 1680 में जन्मे। स्वयं जाति के सैयद, पर अपना गुरु बनाया शाह इनायत कादरी को, जो खेती-बाड़ी किया करते थे। बहुत विरोध हुआ इस पर।

- पर 'बुल्लेशाह' ऊंच-नीच, जात-पांत, भेद-भाव और धार्मिक पाखण्ड को एकदम नकारते थे और 'इश्क' को सबसे ऊपर मानते थे। हिन्दू-मुस्लिम-सिख एकता के प्रतीक थे वह।
- उन्हीं सूफी-संत कवि की जीवन झांकी और लोकप्रिय काव्य को प्रस्तुत किया है पंजाबी के विद्वान कवि **डा० हरभजन सिंह** ने।

सरस्वती सीरीज

ISBN-81-216-0152-5

हिन्द पॉकेट बुक्स